प्रकाशक:—
रघुनाथप्रसाद सिंहानिया
नवराजस्थान ग्रन्थमाला कार्यालय,
७३।ए चासाधोबापाड़ा स्ट्रीट
कलकत्ता

प्रथमावृति
मूल्य १।)

मुद्रक:—
भगवतीप्रसाद सिंह
न्यू राजस्थान प्रेस,
कलकत्ता



दुर्गाप्रसाद झुन्झुनूवाला, बी० ए०

परिचय

भाई दुर्गाप्रसाद से मेरा परिचय छात्रावस्था से ही रहा है--वे मेरे सहपाठी रहे—उन्होंने पढ़ना छोड़ा नहीं और मैंने छोड़ दिया यही मेरे और उनमें अनैक्य रहा।

हम पाँच वर्ष तक एक साथ एक ही विद्यालय में पढ़ते रहे। प्रतिभा मनुष्य में प्रकृतिगत होती है—जो विकसित होने पर अपना चमत्कार दिखाती है। दुर्गाप्रसाद मे भी प्रतिभा थी। समय-समय पर उस प्रतिभा का क्षणिक अविकसित उद्रेक देखने में आता था किन्तु वह प्रतिभा कई अनिवार्य कारणों से अपने विकास का मार्ग ढूँढ़ती हुई अपने मे ही खो जाती थी। किन्तु, अन्त में वह अपने

इस वर्तमान रूप में प्रकट हो ही गई। मुझे याद है—जिस समय जनवरी के प्रारम्भ में, हम लोग एक कक्षा से दूसरी कक्षा में भेजे जाते थे उस समय दुर्गाप्रसाद नवीन वर्ष के उपहार स्वरूप बधाई के रूप में छोटी-छोटी तुकबन्दियाँ बना कर हम लोगों में वितरित किया करते थे। वे गति हीन, छन्द-हीन किन्तु भावमय तुकबन्दियाँ वास्तव में हास्यास्पद होती थीं। उस समय हमने यह सोचा भी न था कि उन तुकबन्दियों का क्रमिक विकास इस रूप में जनता के सामने प्रकट होगा और उसे प्रकाशित करने का अधिकार भी छात्र-जीवन के इस साथी को ही प्राप्त होगा। प्रस्तुत संग्रह दुर्गाप्रसाद की कविताओं का ही संग्रह है।

गद्य साहित्य की ओर भी दुर्गाप्रसाद की गति अच्छी है। उनके लेख और कहानियाँ भी सुन्दर होती है। यदि पाठकों ने प्रोत्साहन प्रदान किया तो हम शीघ्र ही उनकी कहानियों का संग्रह भी उनकी भेंट करेंगे।

इस संग्रह की सभी कवितायें भावमय हैं। पद रचना सुन्दर है। गतिमय छन्दों से संगीतमय काव्य की ओर क्रमशः विकास मनोहर प्रतीत होता है।

इन कविताओं में करुणा प्रधान है—कह नहीं सकता, क्यों ? किन्तु अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध महाकवि 'शैली' के शब्दों में मेरा भी यह मत है कि—

"Our sweetest songs are those that tell of saddest thought"

।।।

अथवा—

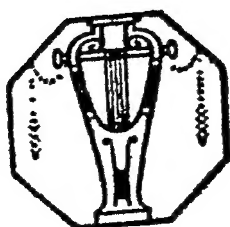
वियोगी होगा पहला कवि, आह से निकला होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप वही होगी कविता अनजान।

—पन्त

यद्यपि दुर्गाप्रसाद की प्रतिभा अभी विकास के मार्ग पर है तथापि कहीं कहीं इनकी कविताओं में भावी कवि का भावमय चित्र परिलक्षित होता है। यदि ये इसी प्रकार साहित्य सेवा में लगे रहे तो आशा है कि भविष्य में हिन्दी साहित्य में इनका भी एक स्थान होगा। अन्त में 'सौरभ' का हिन्दी साहित्य जगत् मे अभिनन्दन करते हुए हम कहते हैं—

आ, आ, "सौरभ" लिये मधुर मृदु भावों की अनुपम डाली,
चुन-चुन सुन्दर कली मृदुल प्रमुदित हो पुनः व्यथित माली।

रघुनाथप्रसाद सिंहानिया।



भूमिका

इन कविताओं के लेखक श्रीयुक्त दुर्गाप्रसादजी झूंझनूंवाला कलकत्ता विश्वविद्यालय के ग्रेजुएट हैं। आपकी रचनाओं को पढ़ कर मेरे चित्त में बहुत आनन्द हुआ। कारण इसका यह है कि मारवाड़ी छात्रों में मौलिक रचना की ओर जितना ध्यान होना चाहिये उतना नहीं है। इस संग्रह की अधिकांश रचनायें—जहां तक मुझे मालूम हुआ है कवि ने केवल अपनी ही प्रसन्नता के लिये लिखी थीं। कवि ने कभी भी इनका पत्रों द्वारा प्रचार करना नहीं चाहा-वे तो स्वान्तः सुखाय ही इसकी रचना करते और रखदेते थे।

हमारे समाज के साहित्यसेवी श्री रघुनाथप्रसादजी सिंहानिया को यह बात मालूम हुई और उन्होंने उन कविताओं को देख कर आग्रह किया कि इन कविताओं को छापने का उन्हें अवसर प्राप्त हो। इन दोनों साहित्य सेवियों की पुरानी मित्रता है। इसलिये श्री दुर्गाप्रसादजी उनके आग्रह को टाल न सके। इसी के फलस्वरूप हिन्दी-साहित्य क्षेत्र में इस काव्य-संग्रह का उपस्थित होना सम्भव हुआ।

जो कविता कवि केवल अपने ही मनोरंजन के लिये लिखता है, उसमें एक प्रकार की सरलता तथा वास्तविकता होती है, जो किसी खास उद्देश्य से लिखी हुई कविता में नहीं होती। परन्तु साथ ही साथ ऐसी कवितायें बहुधा आजमाइश के रूप में ही होती

हैं। कारण, कवि अपनी शक्ति को यथा रुचि और यथा गति आजमाता है और इस बात का ख्याल नहीं करता कि दूसरा कोई उसे देख रहा है या उसकी वाणी को सुन रहा है।

दुर्गाप्रसाद के हृदय ने भी इसी भावना के प्रवाह में कहा है 'रे छोड़, मुझे एकाकी' और किसी अनादि तथा अनन्त वेदना को अनुभव करते हुए भोलेपन में ही आनन्द पाया है। जैसा कि उन्होंने कहा है—

"किन्तु, आह ! क्या भोलेपन का,
है अस्तित्व अमेल !"

फिर भी, अपने रोने का मजा या कष्ट या मधुर वेदना का दूसरों को भी अनुभव हो—यह प्रति समय उन्होंने नहीं भुलाया। जब इच्छा हुई है उस समय अपने ही अपने पास न गा कर दूसरों की उपस्थिति भी उनकी नज़रों के सामने आ पड़ी है। उन्होंने कहा है-

"कुछ भी हो यही कामना—
रोकर मैं विश्व रुलाऊँ।"

इस सम्मिलित रुदन के समय क्या ही सुन्दर रंग का खेल हो उठता है-

"आँखों की लाली मे मेरी
अभिलाषा का सूखा रङ्ग,
बार बार पलकों में छिप कर
ले आता है एक उमंग;

उस उमंग में भर जाती है
मेरे आँसू की धारा—
जिसे बहाने को, प्रिय, देना
अपने शुभ्र हृदय का रंग"

कवि केवल अपनी ही स्मृति और विस्मृति के भँवर जाल में नहीं फँसे रहते, परन्तु कवि की आत्मा और उसका आदर्श देव दोनों

मिलकर स्मृति-विस्मृति की उलझन में पड़ जाते है - उस समय तो एक अनूठा दृश्य उपस्थित हो जाता है।

"विस्मृति-पथ के पथिक निठुर वे—
किन्तु, क्षमा, जीवन-आधार,
भूली मैं, मधुमयी व्यथामय
स्मृति उनका अनुपम उपहार !
आह ! व्यथित जीवन में भूलूंगी,
न कभी उनका, वह प्यार,
मधुर वेदना ही हो, प्रियतम,
मेरे जीवन का आधार !

इसके वाद 'वेदना का उपहार' तो वहुत ही सरस है। अपना सर्वस्व अपने आदर्श देव के चरणों पर दे चुके - फिर भी आदर्श देव हाथ वढ़ाये खड़े हैं—उस समय कवि के हृदय में बहुत घवड़ाहट होती है—आखिर वहुत कुछ खोज करने पर हठात् एक चीज मिल ही जाती है—

"है बची वेदना मेरी, अनुताप दुखी जीवन का।"

यह मिलते ही दान करने के लिये मन उतावला हो उठता है-- वह सुध-बुध भूल कर आखिर देव के चरणों ही पर इसे भी रख देता है और अंत में देव को खाली हाथों ही जाना पड़ता है। इस कविता के अन्दर जो यह सुन्दर भाव छिपा हुआ है—उससे पाठक के हृदय में बड़ी तृप्ति होती है। वैसे ही 'चित्रकार से' बड़े रोचक बचन कहे गये हैं। यद्यपि उसमें कोई नवीनता नही है परन्तु 'सौरभ'

कभी पुरानी नहीं पड़ती। 'सजल संगीत' भी ध्वनि इत्यादि के हिसाव से वहुत ही सुन्दर गुंजित हुआ है।

'जगत-जीवन' पर जो कविता है वह भी ध्यान देने योग्य है। इससे भी कवि में जो सन्निहित शक्ति है और प्रस्फुटित होकर किसी समय अद्भुत चमत्कार दिखा सकती है—उसका पता लगता है। 'भूल' और 'आलोक' के विषय बहुत प्रचलित हैं—परन्तु, रचना सरस हुई है।

साहित्यिक भावुकता में कवि ने अपनी जननी जन्मभूमि को नहीं भुलाया है—उसकी भी उसने बड़े ही मधुर शब्दों में याद की है। 'चित्तौड़ दुर्ग के प्रति' और 'अमर गीत' इसी का परिणाम है।

इसी प्रकार इस संग्रह में मार्के की कवितायें और वाक्य भरे पड़े हैं। जिन पाँच-सात कविताओं का उल्लेख किया गया—इसका यह मतलब नहीं कि इस संग्रह में केवल ये ही सार हैं—वे तो केवल दृष्टान्त मात्र ही हैं।

अन्त मे मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि कवि की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़े और मुखरित हो। कवि के ही शब्दों में—

गूँज उठे सौरभ अम्बर में,
जगमे, वनमे, गिरि-गह्वर मे,
वने विश्व, रे, यह चिर सुन्दर,
जीवन अमर कीर्तिमय हो!

कलकत्ता,
विजया, १९९३

कालीप्रसाद खेतान



दो शब्द

परिचय में मैं केवल ये दो शब्द कह देना आवश्यक समझता हूं। मैं अपने को कवि नहीं कहता और न अपनी समय-समय की रचनाओं को इस छोटे से संग्रह के रूप में प्रकाशित करने की ही मेरी इच्छा थी। किन्तु अपने कुछ इष्ट-मित्रों की प्रेरणा से ही मैं इन रचनाओं को "सौरभ" के रूप में साहित्य संसार के सामने उपस्थित करने का साहस कर रहा हूं।

ये थोड़ी सी तुकबन्दियाँ कविता कहे जाने योग्य नही है। किन्तु अपनों का अपनों पर स्नेह होता है। इसलिये मैं उस स्नेह-भार की उपेक्षा करने में असमर्थ रहा। यही कारण है कि आज "सौरभ" कविता कानन में प्रस्फुटित होने जा रहा है।

मेरी रचनाओं में कुछ बाल्यकाल की हैं। इसलिये उनमें भाव-दोप तथा छन्ददोप अधिक हैं। यों तो ये दोप सम्पूर्ण संग्रह में ही मिलेगे किन्तु विशेषतः उन रचनाओं में तो अवश्य है। किन्तु मैंने

उन्हे ज्यों का त्यों ही रख दिया है क्योंकि बाल्यकाल की उन कोमल स्मृतियों पर अनुभव का कठोर भार डालना मेरे हृदय ने स्वीकार नहीं किया।

खड़ी बोली के साथ प्रेम होते हुए भी मैं व्रजभाषा का मोह नहीं छोड़ सका। यही कारण है कि जगह-जगह पर व्रजभाषा के शब्दों का समावेश हो गया है। इसका कारण यह है कि उन स्थानों पर खड़ी बोली के शब्दों की अपेक्षा मुझे व्रजभाषा के शब्द अधिक मधुर और सुन्दर प्रतीत हुए। अपनी आत्मा के इस निर्णय की अवहेलना मैं नहीं कर सका।

भावों के विषय में यह कहना है कि मेरी रचनाओं के सभी भाव मेरे अपने नहीं हैं। बाल्यकाल से ही मुझे साहित्य में रुचि थी और अपनी इस रुचि का रंजन करने के लिये मैं अच्छे-अच्छे लेखकों एवं कवियों की रचनाओं का अध्ययन करता रहा हूं। अभी भी साहित्य-संसार के सुप्रसिद्ध कवियों की मधुर रचनायें मेरे जीवन की संगिनी हैं। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उनके भावों की छाप मेरी रचनाओं पर पड़ी हो। सच्ची बात तो यह है कि इनकी रचनायें ही मेरे हृदय के भावों को भी आन्दोलित करती थीं और दोनों ही के सम्मिश्रण का यह फल आज जनता के सम्मुख उपस्थित है।

मेरी रचनाओं में करुणा प्रधान है। इसका कारण क्या है— यह नहीं कह सकता। जीवन में असफलताओं की ठोकरें खाकर

मनुष्य निराशावादी हो जाता है—यह सत्य है। किन्तु मेरा निराशावाद इससे भी कुछ आगे है। संसार के इस कर्ममय जीवन में मनुष्य सुख-दुख की लहरों के थपेड़े खाता हुआ किसी अनिश्चित पथ पर निरुद्देश्य चला जा रहा है। कर्ममय जीवन के इस भीषण कोलाहल में भी, रात दिन निरन्तर अथक परिश्रम करते रहने पर भी जब हृदय से यह पूछा जाता है कि—यह सब क्यों? तो कोई निश्चित उत्तर नहीं मिलता। क्या सासारिक सुखों की लालसा? किन्तु क्या वे स्थिर हैं? क्या वास्तव में जीवन का उद्देश्य यही तक है? इन्हीं विचारों से आन्दोलित हृदय जब वर्तमान जीवन पर दृष्टि डालते हुए इस प्रश्न पर एक निर्णयात्मक दृष्टि डालता है तो एक भूल—एक छलना—एक मृग—मरीचिकासी आंखों के आगे फिर जाती है। यह जन-रव, कर्म-मार्ग का यह भीषण कोलाहल व्यर्थ सा प्रतीत होता है। सांसारिक स्थिति निराशापूर्ण जान पड़ती है। हृदय से एक व्यथापूर्ण निराशा से भरी हुई तान निकल पड़ती है और आत्मा की आकुल ध्वनि यह पता लगाने का प्रयत्न करती है कि वास्तव में मानव-जीवन का मार्ग किस अनन्त में छिपा हुआ है। इसी निराशा की—आत्मा की इसी आकुलता की छाप मेरी रचनाओं पर पड़ी है—यह छाप व्यापक हो गई है।

छायावाद, रहस्यवाद अथवा हृदयवाद के पचड़े में न पड़ कर मैं हृदय की वास्तविक ध्वनि को, आत्मा की सच्ची आवाज़ को शब्दों की स्रोतस्विनी मे प्रवाहित करने को ही वास्तविक रचना

स्वीकार करता हूं। हृदय की उन सीधी सी ध्वनियों को दुरूह एवं जटिल भावों के जाल में समेट कर उन्हे क्लिष्ट एवं अगम्य बना देना मेरे मत के विरुद्ध है। हृदय के सीधे भावों को सीधी सी भाषा में व्यक्त कर देना ही मुझे रुचिकर प्रतीत होता है। फिर चाहे वह छायावाद हो या रहस्यवाद अथवा हृदयवाद इसकी मुझे चिन्ता नहीं है।

शेष में यही कहना है कि यदि मेरी ये रचनायें जनता का कुछ भी मनोरंजन कर सकीं तो मैं इनको सफल और सार्थक समझूंगा।

दुर्गाप्रसाद झूंझनूंवाला



सूची

—:※:—

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	कविता-पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३	४	हंस	हँस
३०	६	अर्घ्य	अर्घ्य
४०	४	अञ्चल	चञ्चल
४१	३	मधुरिया	मधुरिमा
४४	५	वह	यह
४८	११	अवनी	अवनि
५६	६	रजवी	रजनी
५६	१६	समाहत	समहत
६१	४	शोमित	शोभित
६९	६	खोज से	खोज ले
८२	५	जग रही है	जगा रही है
९२	४	हुँकारों	हुङ्कारों
९६	१८	हुँकारों	हुङ्कारों
१०५	६	कमल-कुँज	कमल-कुञ्ज
११४	१०	उन्मत	उन्मन



भेंट

करुणामय, जीवन के व्याकुल
भावों का ले कर यह भार,
जग की करुणा को बटोर कर
आया 'व्यथित' तुम्हारे द्वार।

मेरी करुणा पर अपनी करुणा
की कोमल दृष्टि पसार,
स्नेह-सुमन की यह छोटी सी
अंजलि, प्रभु, करना स्वीकार!



सौरभ

सौरभ

री, मादक सौरभ सुमन-वास—
प्रमुदित कलियों का मृदुल हास !
खिले वृन्त पर सुमन सुकोमल,
जटिल डालियों में हंस-खिल-पल,
प्रमुदित से जीवन में प्रतिपल,
फैलाते अवनी पर अविकल
सौरभयुत कोमल मधुर वास,
री, मादक सौरभ सुमन-वास !



कंटक कुटिल छेदते नित तन,
विकल वायु के झोंकों से बन,
प्रमुदित अलि-कुल का सुन गुंजन,
सुख-दुख की लहरों में जीवन
का पुलकित मधुमय शुभ विकास !
री, मादक सौरभ सुमन-वास !

वह दो घड़ियों का मुदित गान—
क्षण में आकुल हैं व्यथित प्राण,
वह सुमन, आह ! अब पड़ा म्लान;
प्रभु-चरणों मे, पर, गिरा जान
हो रहा अमर वह सजल हास !
री, मादक सौरभ सुमन-वास !



१

वह अतीत, उसकी स्मृति में
कवि के दृग के आंसू ये चार,
कहीं रुला दें ये न किसी को—
करुण कथायें जो दो चार !

अरी, भुला दे, विस्मृति, स्मृति से
वे अतीत की गाथायें,
विकसित होती रहें हृदय में
'व्यथित' विकल अभिलाषायें !





अतीत जीवन

मेरा वह सुखमय जीवन
सोता स्मृति के अंचल में,
उस जग की याद दिलाता
इस जीवन के पल-पल में।

क्या प्यार भरा जीवन वह
छल की छाया से दूरित;
मेरा चंचल मन पावन
मृदु प्रेम-सुरभि से पूरित।

अब रोता मैं उस जग को,
विस्मृति, हा! स्मृति बन रहती;
मेरे दुख की प्रतिध्वनि में
सरिता भी कल-कल करती!

ऊषा का मन्द उजाला
जब जगती में मुसकाता,
तब उस अतीत जीवन का
आलोक हृदय में छाता।



वह प्रेम भरा पागलपन,
हा ! प्यार भरे दिन बीते !
चंचल चित, व्याकुल स्मृतियां,
रह गये दिवस ये रीते !

जग-जीवन का यह वैभव,
देखो, निज रूप दिखाता;
मेरा यह आकुल अन्तर
उस वैभव पर अकुलाता !

सुख के साधन जीवन में
अब दुख ही दुख बरसाते,
उर की भूली ममता को
स्मृति-पथ में फिर, हा ! लाते !

रे, छोड़ मुझे एकाकी,
सूने मे दुख सहने दे;
जीवन की सूनी घड़िया
उसकी स्मृति में खोने दे।

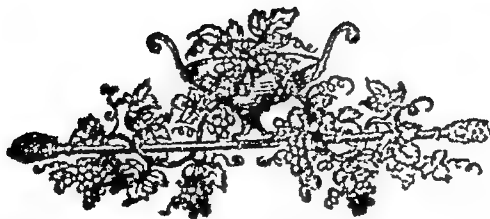
जग हॅसता है, वह देखो,
मैं रोता हूॅ, जीवन-धन !



क्या वे अतीत की घड़ियाँ,
क्या यह सूना सा जीवन!

क्या कहा ?—विरह आलिंगन
से निर्मित है यह जीवन,
दुख सुख की लहर लहर पर
मिटता हँसता जग-जीवन!

कुछ भी हो, यही कामना—
रो कर मैं विश्व रुलाऊं,
तेरी स्मृति में ही, प्रियतम,
ये दिवस व्यथित विसराऊं!





अतीत का खेल

दिखा वह भोलेपन का खेल,
पुनः वह मृदु-मधु-सुरभित खेल।

वह क्रीड़ा, वह कौतुक सुन्दर,
वह सुहासमय अभिनय मनहर,
नव उमंग, नव हास मृदुल, वह
नव कलियों का मेल;
दिखा वह भोलेपन का खेल।

हँस हँस कर उमंग से मन में,
किलक किलक क्रीड़ा-कानन में,
एक साथ इस विश्व-मंच पर
दिखलाते सब खेल।
दिखा वह भोलेपन का खेल।

देख देख सब प्रमुदित होते,
वलिहारी, सब वलि-वलि जाते,
किन्तु, आह! क्या भोलेपन का
है अस्तित्व अमेल!
दिखा वह भोलेपन का खेल।



कहां गये सुख के दिन वे अब ?
मित्र-मण्डली जुड़ती थी जब;
धवल चन्द्रिका में होता जब
नव कुसुमों का खेल,
दिखा वह भोलेपन का खेल।

आती है उस दिन की स्मृति जब,
हृदय व्यथा से भर जाता तब;
किस अतीत के आनन में, हा !
समा गया सब खेल !
दिखा वह भोलेपन का खेल।

जीवन की दुखमय क्रीड़ा से,
व्यथित हृदय व्याकुल ब्रीड़ा से;
क्या अतीत फिर दिखलायेगा
अपना मधुमय खेल !
दिखा वह भोलेपन का खेल।





अतीत की ओर

चलो, मन, भोलेपन की ओर।
विश्व-रंगथल है यह, प्यारे,
दुख पीड़ामय घोर।

प्यार का सुखमय कोलाहल,
विरह का दुखमय दावानल,
एक साथ दोनों का होता
अविरल ताण्डव घोर!
चलो, मन, भोलेपन की ओर।

प्रथम आशा का सुन्दर प्रात,
सुखद अभिलाषा का सुप्रभात;
अन्त शून्य निःश्वास-शेष है
इस जीवन का छोर!
चलो, मन, भोलेपन की ओर।

देख मुरझाया खिला सुमन,
प्रकृति भी करती यही रुदन—
हरा-भरा सुखमय था मेरा
वह जीवन का ओर!
चलो, मन, भोलेपन की ओर।



सुखी था प्यारा बालापन,
खिल हँसता था भोलापन;
व्यथित हृदय, चल चल, रे, फिर, हा!
उस अतीत की ओर!
चलो, मन, भोलेपन की ओर।





विगत वैभव

जीवन का मधुमय ललित गान !
अरी वेदने, बिखर पड़ा, अह !
मेरा वह कोमल मधुर गान !
जीवन का मृदु सा मदिर गान !
री, वह जीवन का ललित गान !

सुमनों के अंचल में बिखरा
था सौरभ का अमित दान,
भ्रमरों की मुग्धा अवलि नित्य
गाती प्रिय के थी मदिर गान;
बिखरा वह यौवन, सुमन म्लान—
था अन्तर्हित अब वह सुगान;
री, नहीं मधुप, अब वह न मान,
आकुल से थे ये विकल प्राण !
लुट गया, आह ! वह मधुर गान–
जीवन का मधुमय मदिर गान !

पावस में उमड़ी हुई सरित
की लहरों का वह निठुर हास—



सूने से पुलिनों का निर्मम
भाषा में था करता उपहास;
हैं, अरी, समेटे वही पुलिन
अपने अंचल में विगत मान,

ऱी, क्षीण सरित के विफल गान—
करुणा से आविल विकल प्राण!
है नहीं, अहो! वह प्रलय-गान—
जीवन का भैरव-भ्रमित गान!

सुन कर करील की कुञ्जों में
मोहन मुरली का स्वर ललाम—
यमुना थी उमड़ उमड़ उठती,
प्रमुदित ब्रज-गोकुल-ग्वाल-ग्राम;
है, अरी, व्यथित सी रवि-तनुजा,
है करुण आज वह मत्त गान;

सूनी कुञ्जों की नृत्य-तान,
सूना वृन्दावन, शून्य प्राण,
री, शून्य आज ब्रज भी महान,
सूना जीवन का मधुर गान!

सुन्दर अलकों की अठखेली में
शैशव का वह सरल हास;



अस्थिर जग—यौवन की मादकता
आई ले निज मधु-विलास;
मिट गया सरल शिशु-जीवन वह,
मिट गया, आह ! यौवन गुमान !

अब जरा-मृत्यु का प्रलय-गान !
री, भय से व्याकुल सरल प्राण !
मिट गया सरल शिशु, मस्त गान—
वह मधुमय मेरा ललित गान !

मंजुल जीवन की मादकता में
भावों का वह विरस गान,
अह ! स्नेह-सलिल की चल धारा में
तीक्ष्ण भँवर, रे, उफ़, अजान !
टूटा स्वर, टूटी स्वर-लहरी,
कम्पित वीणा की मृदुल तान !

सुख में वियोग का करुण गान !
सुन कर विहाग ये व्यथित प्राण
वह कहां, वेदने, मधुर तान ?
जीवन का, री, मृदु-ललित गान !





वे दिन

वे दिन भी कितने सुन्दर थे !
जीवन के थोड़े से पल वे—
जब प्रमोद के मृदु मर्मर थे !

अलि-कुल के मधुमय गुंजन से,
हिय में मधुर प्रणय-स्पन्दन से,
हँस उठतीं खिल कर कलिकायें—
स्नेह-विभोर सकाम भ्रमर थे !

स्नेह-विहीन दीप था व्याकुल;
देख, प्रणय-पथ में वे आकुल—
जल उठती थी दीप-शिखा फिर
जलते जब पतंग निर्भर थे !

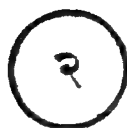
अरे, तृषित चातक की आकुल
"पीहा" की ध्वनि में जग व्याकुल,
काँप उठे थे जलद सजल वे—
झर झर पड़े विकल अम्बर थे !

तुतली सी प्यारी बोली कह
शिशु-जीवन की सरल हँसी वह—
निश्छल मधुमय मन्द हास्य में



भोले से वे भाव अमर थे !
मदिर स्नेह के मृदु गुंजन में,
दो घड़ियों के अभिनन्दन में,
भरे प्यास से, खिले नयन वे
स्नेह-विकल से तृपित अधर थे !
आह ! झर गईं खिल कर कलियाँ
नहीं मधुर, मादक वे घड़ियाँ
रहे व्यथित आकुल से क्षण अव—
अह ! वे सुखमय दिन नश्वर थे !
आह ! कहां वे गये दिवस अव ?
विमल मोद की छाया में जव,
जीवन के मधुमय उपवन में
स्नेह-सलिल के चल निर्झर थे !
प्रिय वे दिन कितने सुन्दर थे !





मिलन ? कहां है मिलन ? अरे,
कण कण में विरह व्याप्त जग में।
अरे, धरा, चंचल पथि,' तूने
निज पग बढ़े विपम मग में !

आशा की चंचल लहरों पर
लिये निराशा दुख का भार,
चला जा रहा मिलन-मार्ग में
स्नेहांजलि लेकर सुकुमार !

कहीं प्रगट छवि, कहीं दुरित
प्रिय की, करुणा का गान कहीं,
कभी विकल हो, अरे सुनाता
व्यथित हृदय की तान कहीं !





याचना

भूल प्रेम के कोलाहल में
भटका था मैं इस मग में,
आश्रय-हीन हृदय था मेरा,
आश्रय पाया था उनमें।
फिर भी भूलू यदि, प्रभुवर,
तो मेरी भूल भुला देना।
जीवन की अन्तिम घड़ियों में,
देव, तुम्हीं अपना लेना।
आँखों की लाली में मेरी
अभिलाषा का सूखा रंग,
वार वार पलकों में छिप कर
ले आता है एक उमंग;
उस उमंग में भर जाती है
मेरे आँसू की धारा—
जिसे बहाने को, प्रिय, देना
अपने शुभ्र हृदय का रंग।





वह प्यार

आशा थी—जीवन में वे
नव ज्योति जगाने आयेंगे,
मुझ अभागिनी के अंचल में
कुछ तो कभी दिलायेंगे।

था मुझको, अभिमान यही—
वे हैं मेरे जीवन-आधार;
उनके पावन पुण्य हृदय पर
मेरा भी है कुछ अधिकार।

मैंने सोचा था—प्रियतम
कुछ देंगे मुझको भी उपहार,
अनुकम्पा से कभी विलोकेंगे
उनके वे नयन उदार।

किन्तु, आह ! टूटी आशा,
सुख-स्वप्न सभी, हा ! नष्ट हुए !
जिन पर था अभिमान, वही
जब छूटे, मुझ से रुष्ट हुए।



मेरे हिय की सुखद कामनाओं
का हुआ करुण संहार,
आह ! हृदय की अभिलाषा
उन्माद हुए सब जल कर छार।

नाथ, खींचते चरण ! प्रेम का
मैं लाई अनुपम उपहार,
अरे, वही ठुकराते, देती
जिनको मैं निज पागल प्यार !

आशा थी जिनकी, वे भूले,
आह ! आज भूलू किस पर ?
सुख-हिंडोर की डोर छिन्न है,
कहो, कहां भूलूं, किस पर ?

कैसे समझेंगे वे आकुल
उर का करुण घात-प्रतिघात ?
कैसे जान सकेंगे प्रियतम
मर्म भरी अन्तर की बात ?

विस्मृति-पथ के पथिक निठुर वे—
किन्तु, क्षमा, जीवन-आधार,
भूली मैं; मधुमयी व्यथामय
स्मृति उनका अनुपम उपहार !



आह ! व्यथित जीवन में भूलूंगी
न कभी उनका वह प्यार,
मधुर वेदना ही हो, प्रियतम,
मेरे जीवन का आधार !



प्रेम की व्यथा

प्रेम की मधुमयि व्यथा अपार।
मधुर वेदना से व्याकुल चित, विगलित दृग अनियार ॥
भूल प्रेम के कोलाहल में, पाया उनका प्यार।
आश्रय-हीन हृदय था मेरा, आश्रय मिला उदार ॥
किन्तु जगत की मृग-माया ने खोला अपना द्वार—
आह ! अभागे हृदय ! भुलाया उनका अनुपम प्यार !
प्रियतम, क्षमा—हृदय सरसित हो, मधुर वसन्त-बहार
लावे उजड़े जीवन में फिर व्यथित तुम्हारा प्यार !





अभिलाषा

भाव-राज्य के दिव्य गगन में
चित जिसका लहराता था,
सुस्मित-स्निग्ध-स्नेह-राशि में
मन जिसका मुसकाता था;
प्यारे सुख से रहें—यही
जीवन की चिर अभिलाषा थी,
जिसके हिय की प्रेम-वेदना
नित नवीन रँग लाती थी;
आह ! उसी प्रेमी जीवन में
कष्ट-कुलिश की खर धारा !
अरे, आज क्यों व्यथित हुई
उसके जीवन की वर धारा ?
मन्द हास्यमय आँखों में, अह !
पीर-नीर क्यों भर आया ?
अरे, प्यार से भरे हृदय में
प्यार-कष्ट है क्यों छाया ?
व्यथापूर्ण जीवन में क्यों वह
सुख की एक झलक आई ?



ज्योति-हीन आँखों में क्यों
वह क्षीण ज्योति-रेखा आई ?

मृग-मरीचिका बन कर क्यों
उसने प्यासे को बहकाया ?
आह ! दुखी को केवल क्षण भर
क्यों सुख का दिन दिखलाया ?

अरे, प्रकाश दिखा कर क्यों
फिर अन्धकार में ले आये ?
व्यथित जीव की व्यथा बढ़ा कर,
कहो, कौन सा सुख पाये ?

प्रिय, जब अन्त यही था करना,
तो क्यों तुमने प्यार दिया ?
हिय की प्रणय-धार को क्यों
निज स्नेह-वारि से बहा दिया ?

बहती हुई स्नेह-धारा को
फिर क्यों सहसा रोक दिया ?
अरे, निठुर, क्यों जीवन-सर में
तूने विष है घोल दिया ?

घ



कहां चले, प्रियवर, तज कर ?
जीवन की साध अभी बाकी,
प्रेम-वारि से फिर भर दो हिय,
अब भी प्यास रही बाकी।

यही निवेदन है तुमसे अब
दुखिया को न सताओ तुम,
व्यथापूर्ण दुखमय जीवन को
अधिक दुखी न बनाओ तुम।

जीवन की अभिलाषा को
मत पैरों तले कुचल डालो,
निर्दयता से कोमल कलिका
को, अह ! यों न मसल डालो।

पर, है लाभ नहीं कहने से,
उचित मौन रहना मेरा;
अपने हिय की छिपी अग्नि में
उचित नित्य जलना मेरा।

फिर भी एक यही अभिलाषा,
प्रियवर, तुम पूरी करना—
भला रहा या बुरा—समझ
अपना ही याद कभी करना !



होगा सहना अमित विरह,
पर, मुझको, हा ! न भुला देना !
प्रियतम जीवन की अन्तिम
घड़ियों में तो अपना लेना !



वेदना का उपहार



आये मेरे घर, प्रियतम,
कुछ पाने की कर आशा।
क्या देकर करूँ तुम्हारी
पूरी मैं यह अभिलाषा ?

सर्वस्व लुटाया मैंने
पहले ही इन चरणों पर,
अब, तुम्हीं कहो, क्या रक्खूँ
फैले इन कंज-करों पर ?



कुछ नहीं दिखाई पड़ती
पूजा की वस्तु पुनीता,
प्रिय, तुम आये हो असमय—
जब पड़ा कोप है रीता।

कलियाँ हैं सब मुरझाईं,
माली की कुटिया सूनी;
इस उजड़े उपवन में है
विरहाग्नि जलाती धूनी।

अलिवृन्द सभी, हा ! भागे,
सौरभ बिखरा जीवन का;
फिर भी देते हो, प्रियतम,
उपहार नवीन दुखों का।

प्रिय, हा ! तुम कुछ मुसका कर,
'कुछ दो'—यों कहते जाते;
निष्ठुर, क्यों दबी व्यथा को
यों बार बार उकसाते ?

इस दीन निराश दुखी को
असमय में यों उलझाते,
मैं हूं रोता निज दुख को,
तुम भेंट माँगने आते !

मैं खो बैठा पहले ही
सब, क्या दूं, तुम्हीं बताओ।
पर, किस मुंह से यह कह दूं—
खाली हाथों ही जाओ?

इच्छा तो है—मैं दे दूं
वैभव सारा जगती का,
पर पाऊं भला कहां मैं
उपहार अभिलषित हिय का!

है बची वेदना मेरी—
अनुताप दुखी जीवन का,
रक्षा की जिसकी दे कर
आंसू इन दीन दृगों का;

है भरा व्यथित जीवन का
सन्ताप इसी में सारा,
जीवन-धन, यह जीवन-धन
तेरे चरणों पर वारा!





जीवन का मोल

हृदय तुमको मिला क्या,
आह! जीवन में तड़पने से!
प्रणय के पुण्य पथ में
नित्य नीरव त्रास सहने से!

चढ़ाया जिस परम प्रिय के
चरण में सार जीवन का,
किया अर्पण जिसे निज
हाथ से चुन मृदु हृदय-कलिका;

दिया था अर्घ्य, धोया था
चरण पावन नयन-जल से,
अहो! प्रिय-पाद की रज को
उठाया था नयन-दल से;

सजल वे ही करुण आँखें
कुचल दीं, आह! जीवन-धन,
लगा ठोकर बिखेरा सब
चढ़ाया जो हृदय का धन!



विमल उपहार भावों का
किया, प्राणेश, अस्वीकार !
लगी क्या देर, निर्मम,
मसलते जीवन-कली का हार !

सदय जिस देव को समझा,
बने निर्दय वही, हा ! आज,
बताऊं क्या तुम्हे, प्रिय,
प्राण की इस यातना को आज !

तुम्हीं से था मिला वह प्यार,
अब तुमसे मिली यह हार;
हृदय की वेदना से पल
रहा है आज पागल प्यार !

ज़रा यह हाल तो देखो
व्यथित, दृग खोल, जीवन का;
बता दो, हा ! बता दो, प्रिय,
यही क्या मोल जीवन का !





उनका जाना

बहुत दिनों से प्रियतम-पथ में
नयन बिछाये थे मैंने,
देने को उपहार भाव के
हार सजाये थे मैंने।

आशा थी—प्रिय आवेंगे;
वे आये, और चले भी, आह!
उनके दर्शन भी न कर सकी,
मिटी न उर-अन्तर की दाह!

प्रियतम चले, आह! जीवन का
साज उन्हीं के साथ चला,
हार पड़ा ही रहा, हृदय का—
जीवन का सब सार चला!

अरे, चले ही जायेंगे, क्या
वे हो कर इतने बेपीर?
रोक सकेगा उन्हे नहीं, क्या
मेरी आंखों का यह नीर?



जिनसे मिलने की आशा से
हुलसित सी थी मैं मन में,
दे न सकेंगे एक बूंद, क्या
प्रेमासव की जीवन में ?

नेत्र बिछे थे आशा-पथ में,
उन्हें कुचल क्या जायेंगे ?
जीवन के सूने पुलिनों को
अधिक शून्य कर जायेंगे !

उनको कोई रोक सकेगा,
क्या न किसी मिस बहला कर—
मूक-वेदना से विजड़ित
मम व्यथित चित्र क्या दिखला कर ?

क्या न बचायेगा कोई
कोमल कलि' को मुरझाने से ?
सह न सकूंगी, अरे, रोक लो
उन्हे, आह। यों जाने से !





निरोध

प्रिय, रोको जिन वरद हस्त,
मत इतना मधुरस फैला दो;
जीवन के सूने पल मे मत
यों मादक जीवन ला दो।

अरे, भर गया है इस मधुरस
से यह जीवन का प्याला,
आह! रोक लो, छलक रही है
अब तो यह, प्रिय तम, हाला!

मुझ दुखिया की झोली में
क्यों डाल रहे करुणा का भार?
सह न सकेगी फटी हुई झोली
यह वैभव का सम्भार।

प्रियतम, ये अनुपम निधियाँ!
मैं इन्हे कहाँ रक्खूँगा, आह!
टूटी सी कुटिया है मेरी,
जहाँ चाह बन रहती दाह।



जगा न दो पागलपन को,
यों पिला प्यार की, प्रिय, हाला,
होता जाता है इसकी सौरभ
से ही मन मतवाला।

बहा न दो सूखे जीवन में
स्नेह भरी करुणा-धारा,
बह न जाय, प्राणेश, कहीं
सुख की धारा में पथहारा!

आशा की छोटी सी नौका
पर रखते सुख का यह भार,
विरह-शैल से कहीं न टकरा
कर बिखेर दे जीवन-सार!

सुख के इस छोटे से दिन के
बाद निशा दुख की काली,
सह न सकूँगा, आह! मिलन के
बाद विरह की अंधियाली।

तेरी पावन मधुमयि स्मृति में
व्यथित सिसकियों का उपहार!
अमर वेदना ही हो मेरी
सकल साधनाओं का सार!



अनुरोध

दिखा अनुकम्पा जीवन-प्राण।
सूने से जीवन में भी, क्या
ल ह रा ये गा प्रा ण ?

जिन चरणों में चढ़ा दिया था
मैंने हिय का हार,
वही, आह ! निष्ठुर बन कर
यों ठुकराते हैं प्यार !

नियति का कैसा निठुर विधान !
दिखा अनुकम्पा जीवन-प्राण !

भग्न हृदय में आज, हहा ! यह
भावों का अवसान !
श्वासों की समीर में प्रतिपल
हिय का आकुल गान !

सिसकते हैं ये व्याकुल प्राण,
दिखा अनुकम्पा जीवन-प्राण !

मेरा आकुल मन व्याकुल हो
जाता है उस ओर,



निर्मम से प्रियतम के दर्शन
हित हो प्रेम-विभोर,
जहाँ बैठा है वह छविमान।
दिखा अनुकम्पा जीवन-प्राण।

अब मत ठुकरा, देव, दुखी
जीवन का तू आधार!
इन निराश घड़ियों का भी, हा!
कर दे, प्रिय, निस्तार!
व्यथित जीवन का हो अवसान!
दिखा अनुकम्पा जीवन-प्राण!

तेरी अनुकम्पा के सर में
नहा उठे मम प्राण!
चिर दुखिया की झोली में हो
भरा स्नेह का दान,
मधुर हो जीवन का, प्रिय गान!
दिखा अनुकम्पा जीवन-प्राण!





चित्रकार से

अरे चितेरे, कर दे चित्रित
मेरा वह संसार—
कर दे उनके पावन मन में
जो क रु णा—सं चा र!

छोटा सा गिरि निर्जन,
उसके नीचे हो उपवन,
सौरभ से सुमनों के
मॅह-मॅह करता हो वह वन;
चित्रकार, दिखला दो पावन
शा न्त प्र कृ ति-सं सा र,
जिसे देख उत्फुल्ल हो उठे
उनका हृदय उदार।

सरिता का मृदु कल-कल
करता हो मुखरित गिरि-थल;
विहगों का रव सुखकर
करता गुंजित हो वन-थल;



शान्त प्रकृति में दिखला दो
यह चंचल दृश्य अनूप,
जिसे देख कुछ हो चंचल सा
उनका भव्य स्वरूप।

वेला रवि हो खोती,
दिन कर-छवि प्रस्थित होती;
चिर-परिचित उस प्रिय के,
सन्ध्या, अभाव में रोती;
उस अभाव का चित्रित कर दे,
चित्रक' रूप उदास—
जिसे देख उनके मन में भी
हो अभाव का भास।

चिर-वियोगिनी आती
नयनों से अश्रु गिराती,
प्रिय की मधुमयि स्मृति में
विरहाकुल स्वर में गाती;
उसकी उस व्याकुल सी ध्वनि में
प्रकृति सदा दे साथ,
सुन कर उस विरहाकुल स्वर को
व्याकुल से हों नाथ!



विरहिन के अंचल में,
उस आकुल अन्तस्तल में,
मधुर भावना होवे
उस व्याकुल मन अञ्चल में;
प्रिय के चरणों पर चढ़ जावे
व्यथित हृदय बन हार!
चन्द्र देव इस मिलन दृश्य पर
बरसावे निज प्यार!
अरे चितेरे, चित्रित कर दे
ऐसा दृश्य उदार!



वेदनामय

मेरे जीवन में न कभी
आशा की रेखा उदित हुई,
कभी न वंशी की कोमल
ध्वनि से जीवन-निशि ध्वनित हुई!
रही अमावस्या की तममयि
निशा, घोर वह अँधियाली,



जीवन-नभ में रही सदा ही
घटा घोर, भयप्रद, काली।
नहीं मधुरिया जीवन-वन में
नहीं कोकिला का कल गान;
अरे, यहां पर हुआ सदा ही
रूप-गन्ध-रस का अवसान!
मधुर-मदिर मलयानिल से
है बढ़ती व्यथा-जनित ज्वाला,
बुझा न पावस सकी प्यास मम,
सूख रही जीवन-माला।
हृदय-विपिन के सुमन स्नेह—
सिचन से हीन हो रहे म्लान,
मिली न आशा-उषा-ज्योति —
वे दे न सके सौरभ का दान।
मन-मन्दिर की सुभग वेदिका
पर न जल सका आशा-दीप,
जीवन-निशा रही, हा! नीरव,
स्नेह-हीन, हा! प्राण-प्रदीप!
दे न सका जगती का वैभव
मुझे कभी सुषमा-उपहार,



जीवन की नौका में भरा
व्यथा का था अतुलित संभार।
अन्धकार में एकाकी, हा!
आयुहीन क्षण बीत रहे।
बीणा के टूटे तारों में
करुणा के संगीत बहे!
विरह-व्यथित जीवन में यों
प्राणेश हुए हैं, हा! बेपीर,
कभी न आये जीवन-धन, हा!
रुका न इन नयनों का नीर!



अन्तर्दाह

अब नहीं मिलन का मेला,
प्रिय, मैं रह गया अकेला।
वह क्रीड़ा—जो मनहारी,
जग की कुसुमित फुलवारी;
वह हास मृदुल सुखकारी,
जीवन की छवि वह न्यारी;



अब कहां सुखों का मेला !
प्रिय, मैं रह गया अकेला !

वह मतवाला सा जीवन,
जीवन का मतवालापन;
सुख-वैभव के प्रमुदित क्षण,
प्रियतम, करुणा के वे कण;
अब नहीं सुखमयी वेला—
प्रिय, मैं रह गया अकेला !

खाली है वह पथ प्यारा—
लुट गया सौख्य-धन सारा;
सूनी जी व न-स रि-धा रा,
भूला, रे, यह मगहारा;
विधि ने यह कौतुक खेला,
प्रिय मैं रह गया अकेला !

निर्धन का खाली अंचल,
सूना सा जीवन का पल;
तुमने था दिया मधुर फल—
पर वैभव था वह चंचल;
रह गई पुनः अवहेला,
हा ! मैं रह गया अकेला !



दुखिया की करुण कहानी;
निष्ठुर, यह निर्मम वाणी—
है यही मूल्य क्या, मानी?
नयनों का खारी पानी!

है, अरे, व्यथित वह वेला,
प्रिय, मैं हूं रहा अकेला!

प्रिय हैं वे स्मृतियाँ जागीं,
जलती हिय में विरहागी;
रह-रह जलती वह आगी—
अन्तर की दाह अभागी;

वि स्तृ त ज ग-जी व न-मे ला,
मैं ही जल रहा अकेला!

जीवन-धन, वे दिन अभिनव,
नव हास मृदुल, जीवन नव,
गूंजा था प्राणों में रव,
सूना सा है अब यह भव;

सूना पथ सूनी वेला,
प्रिय, मैं रह गया अकेला!





हृदय की चाह

तुम अतीत की चिता, भग्न आशाओं के इतिहास,
उस जीवन की छाया के, ऐ मधुर मदिर आवास,
कि जिसकी आते ही, हा ! याद
हृदय होता बेहाल !
सुषमा का कैसा अनुपम था मधुमय वह मधुकाल !
भग्न आशाओं के कंकाल !

मधुर वीणा-गुंजन के साथ
हो रहा झंकृत हृदय विशाल,
प्रणय का मृदु कम्पन, उल्लास—
हुआ था जीवन, अहा ! निहाल !
रह गईं आहें केवल शेष,
आह ! यह कैसी अगति अकाल।

दो घड़ियों का मिलन, बिछा था मधुर प्रेम का जाल,
जीवन में मतवालापन था मधुर स्वप्न-जंजाल
कि जिसकी केवल छाया शेष—
वेदना का इतिहास !



जीवन की अतृप्त तृष्णा का कोमल-निठुर निवास—
अरे, वह वैभव का निःश्वास !
हृदय के अन्तराल में, आह !
भरा था, प्रिय, मादक उल्लास,
चाह थी—आकांक्षा की दाह—
न मिटती थी अतृप्त वह प्यास;
वेदने, कैसी निर्मम नीति—
नष्ट वैभव का यह उपहास !
हृदय विछाता रहा पांवड़े, स्नेह-सुमन थे चार,
आँखों ने था दिया अश्रु-मुक्ताओं का, प्रिय, हार,
कि जिसकी विमल ज्योति में, नाथ,
मुसकराता था प्यार !
अनुकम्पा-समीर से झंकृत थे प्राणों के तार—
उमड़ उठता था पागल प्यार !
कहाँ अनुराग-पुलक-प्रस्वेद !
कहाँ वह प्रिय के साथ विहार !
वेदने, अरी, वेदने चपल,
वता, री, कैसा यह उपहार—
विकल से प्राणों में, री, आह !
कसकती पीड़ा का यह भार !



किसे ज्ञात था—नियति करेगी निठुर, आह ! आघात,
नहीं ज्ञात था सुखद रात्रि का होगा दुखद प्रभात
कि जिसकी मलिन प्रभा में, आह !
प्रणय का धुंधला राग !
अरे, आज निःश्वास ले रहा वह विदग्ध अनुराग—
जल उठी अन्तर की है आग ।

आह भीगी पलकों में आज
उपेक्षा की है दाहक आग !
भग्न उछ्वासों में है छिपा,
नाथ, तेरा यह करुण विराग !
हृदय से निकल रहा है, अरे,
वेदना का, अह ! विकल विहाग !

चला जा रहा जीवन-सर में, खोज रहा हूं कूल,
आह ! निराशा की वेदी पर चढ़ा रहा हूं फूल
कि जिसकी स्नेह-गन्ध में, अरे,
छिपी जीवन की दाह !
जग-जीवन की सुख दुखमयि सरिता का कूल अथाह—
चला चल, नाविक, सीधी राह !

आह ! असफलताओं के बीच
आर्त्त अभिलाषाओं की दाह !



अरी, विस्मृति में भी है शेष,
निठुर से प्रियतम की स्मृति, आह!
व्यथित उस जीवन की स्मृति शेष—
अमर यह रहे हृदय की चाह!



सजल संगीत

सघन घन सी घिर तमोमयि
आ गई फिर यामिनी, री।
विकल, आह! अभागिनी, री!
मत्त सी बहती समीरण,
अवनि पर गिरते तुहिन-कण,
तममयी आकुल निशा में
अवनी अबला सी बनी री?
शरद की शीतल विभा में,
शून्य नभ की तम-प्रभा में,
आह! व्याकुल वंचिता सी
सिहर उठती यामिनी, री।



चंचला चपला चला सी,
विरह-व्याकुल आकुला सी,
सजल नभ की कालिमा में
दमकती है दामिनी, री।

शून्य नभ, नीरव निशा में,
प्रिय-विरहिता इस दिशा में,
अन्ध तम में कैरवी सी
कल न पाती कामिनी, री।

आह! जीवन के विफल पल,
आर्द्र कंजारुण नयन-दल,
प्रिय विना हिय आकुलित सा,
अवनता अभिमानिनी, री।

तुहिन—शीकर—स्पर्श—प्रमुदित,
सुभग कलिका पुलक-पूरित;
आ रहे क्या?—शान्ति अभिनव!
प्रमुदिता, प्रिय, भामिनी री।

तम-निशा, पंकिल पड़ा पथ,
अयि, प्रफुल्लित सा मनोरथ,
कर, सजनि, आलोकिता सी
रजनि, बनकर चाँदनी, री।



आ रहे वह प्राण के धन,
व्यथित हिय सुरभित मुदित वन,
परिणता हो मदिर गुंजन
में सजल मम रागिनी, री !
मद भरी यह यामिनी, री !



स्वप्नमयी

आह ! चल धीरे मलय-समीर !
जगा न दे सोई पलकों को
हो कर यों बेपीर !
आह ! इन्हीं पलकों के भीतर
स्वप्नों की गति में वह छवि भर,
बाँध सकी थी आज उन्हें मैं;
मत हो अरे, अधीर !
उन्हे छिपा कर नयन-दलों में
अर्चन करती मुदित पलों में,
सींच रही अनुराग-वेलि थी
दे नयनों का नीर !



जाग्रत जग के कोलाहल में
जलता जीवन विरहानल मे,
आज इन्हीं स्वप्नों में मैंने
पाई आकृति धीर।

प्राणों में प्रिय की छवि अनुपम
छिपी स्वप्न बन आज मृदुल तम;
जीवन में मुसकान भरा है
आज सजल गम्भीर।

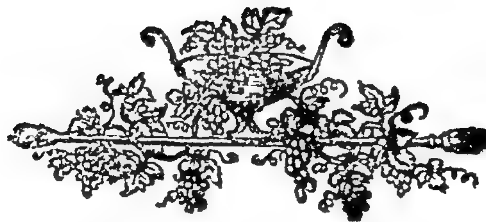
आज नही प्राणों का क्रन्दन,
पुलक भरे ये सुप्त विलोचन,
सोकर ही तो पकड़ सकी, अह।
उनका चंचल चीर!

निठुर न दे यों, आह! थपकियाँ-
चटखेंगी कोमल सी कलियाँ,
जाग उठेगी सुप्त प्रकृति यह
रुदन करेगे कीर!

अरे, खुलेंगे पलकों के पट—
प्रिय होंगे विलीन, व्याकुल घट,
मुरझायेगा जीवन- पाटल,
व्यथित प्राण-सरि' तीर!



अमर स्वप्न की छवि यह मधुमय,
इसी स्वप्न में जीवन का लय;
मत्त समीरण, चल धीरे, अयि,
कोमल मलय-समीर !
खुलें न पलकों के कपाट, प्रिय,
वहे न आकुल नीर !







सुख के अंचल में सोती है
दुख की ज्वाला माल यहीं,
अरे, संभल, है छिपा पड़ा
जग–जीवन का यह जाल कहीं !

सुख में हँस कर व्यथित दुखों से
हो निज धैर्य न खो देना,
अरे, हृदय की मधुर भावना
में करुणा को खो देना !





प्रकृति-सन्देश

मेघाच्छादित गगन-तली में
मधुर वेदना का इतिहास,
अमित-अनन्त-अलक्ष्य-चिरन्तन
व्यथा-जड़ित जग का सुविकास !

हुआ दृष्टिगत वातायन से
शून्य नभस्तल का यह रूप,
स्निग्ध-सुकोमल जल-लहरी से
पूर्ण गगन का वक्ष अनूप।

मधुर गभीर श्याम-घन गर्जन
में जीवन का नव-सन्देश—
शून्य जगत भी नव-जीवन से
कभी पूर्ण होता सविशेष।

किन्तु, अहह ! जन-हीन हुए पथ,
हुआ विगत रवि का वह तेज,
झंझा की झकोर में जग का
मादक हर्ष हुआ निस्तेज !



जीवन की सूनी ममता पर
नभ जल-धार वहाता है—
हहा ! पूर्ण सुखमय जीवन में
विपुल व्यथा-घन छाता है।

नव घन के यौवन-युग में
प्रेमी जन का वह नव अनुराग,
घन-रोदन में निहित व्यथामय
विरही जन का विकल विहाग।

विरह-मिलन, सुख-दुःख, निशा-
दिव में जीवन का पथ निःशेप,
मातृ प्रकृति का यही अमर
मानव-जीवन को नव सन्देश !





दलित कलिका

मम विलोकि समागत यह दशा,
सुमन, क्यों इठला कर हँस रहे ?
कर रहे परिहास सुखेण यों
मृदुल लतिका-क्रोड़-विलग्न हो !

तुम रहे निज सौरभ से, अहा !
सुरभिता रजवी भुवि को बना,
तव सुयौवन-रूप-विमुग्ध हो
अलि सुस्वागत-गीति सुना रहे।

अहह ! गर्वान्वित स्मित-युत, सखे,
छवि-मयंक-सुधा से स्नात हो,
दलित कलिका की करुणामयी
लखि दशा करते परिहास, हा !

सुमन, क्या यह ज्ञात नहीं तुम्हे—
यदपि दलिता कलिका हूँ आज मैं,
मधुमयी वह थी शुभ यामिनी
जब समाहत मैं थी तव समा ?



यद्पि कान्ति हुई गत आज सव,
मैं हुई यद्यपि भूतल-गता,
पर इसी लतिका की गोद में
मैं कभी क्रीड़ा में मग्न थी।

कुसुम. जीवन के नव प्रात में,
कुसुमिता यौवन-मद शालिनी,
मधुमयी, अलि-वृन्द-समादृता
थी विलास-युता मैं गर्विता।

विशद नील निशा के अङ्क में
शशि-सुधा से हो समलंकृता,
निज सुस्निग्ध सुरभि से कर रही
सुरभिता थी भूतल को सदा।

अहह ! किन्तु हुआ गत गर्व सव,
हत हुआ वह मान; सुदृष्टि गत,
अनिल के शुभ-शान्त प्रवाह में,
है व्यथित मेरा अवसान यह !

जगत-जीवन का कौतुक यही —
मधुरिमा करुणागत है सदा।
सुमन, जग-उपवन में हो सदय,
मम सदृश ही तव अवसान है।



जगत-जीवन

ऊब उठा मन सुख की घड़ियों
मे दुख के आ जाने से,
जीवन की हिम–शुभ्र छटा में
श्यामलता छा जाने से।

पुष्प–पुंज में कीट, ज्योति में
अंधियाली का तामस रूप;
सागर की चंचल लहरों में
झंझा का वह विकट स्वरूप।

जीवन के सूने पल में
मधुमयी वेदना का उपहार,
देख मिलन के अभिनव सुख में
विरह-व्यथा का विषमय भार;

चला त्याग सब कुछ, जग की
ममता माया से नाता तोड़,
छोड़ा पतझड़ का असीम दुख
चिर वसन्त की आशा जोड़।



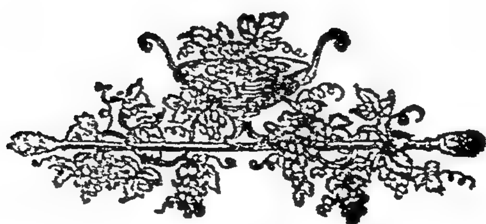
देखा एक विजन गिरि पर
पावन जग-जननी का वह रूप—
वितरण करते जग—जीवों को,
अहो ! सुखद शुभ वस्तु अनूप।
मैं भी था निर्धन मैंने भी
पाने का कुछ किया प्रयास,
फटी हुई अपनी झोली ले
पहुंचा जगत-जननि के पास।
देखा मुझ को, वे हँस बोलीं—
"कहा अभी तक था बेहोश ?
मैं तो सब दे चुकी विश्व को
अनुपमेय रत्नों का कोष।
हाँ, हाँ—मैं भूली; अब भी है
बचा एक अनुपम उपहार,
किन्तु फटी तेरी झोली है
सह न सकेगी इसका भार;
देख, संभाल।" अरे, "मातेश्वरि,
यह क्या ? उफ़, कैसा यह दान ?
भागा था जो वस्तु छोड़—
विरहालिंगन की विपद महान,



आप वही देतीं!" माता ने
दिखलाया नीचे की ओर—
श्याम-श्वेत गिरि मिलित प्रेम
आकर्षण में थे बने विभोर!

यही जगत—जीवन—सुख—दुख,
छाया—प्रकाश का इसमें मेल,
यह जीवन-सर—विरह मिलन की
लोल लहर नित करती खेल।

जीवन की हर एक लहर में
निज अस्तित्व मिला देना,
व्यथित—मधुमयी करुण वेदना
को सुख से अपना लेना।





उपवन

फैला जग—जीवन का दुकूल
चुनते हैं मानव कुसुम—शूल।
जग का छविमय उपवन विशाल,
शोभित मधु, मधुकर औ' रसाल;
गाते पिक, शुक, सारी सुताल—
इस उपवन में, आहा! विशाल
सुख वैभव की सरिता अकूल,
जिसमें फैला जीवन—दुकूल
चुनते है मानव कुसुम—शूल।
यह क्या? झंझा का अतुल कोप,
फैला उपवन पर घटाटोप;
दामिनि दमके करके सुकोप;
मिल देवि प्रकृति का रूप-कोप
निर्मित छवि-उपवन; यहाँ भूल,
फैला निज—निज अंचल दुकूल
चुनते है मानव कुसुम-शूल!



मधु-मधुकर का वह मिलन-गान,
पिक की विरहाकुल व्यथित तान;
वह फुल्ल कुसुम, यह मुकुल म्लान,
छवि किसलय में, हा! विरह-गान;

कुछ तरुण फूल, अह! करुण शूल–
इसमें, हा! मानव गया भूल!
फैला जग-उपवन में दुकूल
चुनता, वह देखो, कुसुम-शूल!



श्रान्त पथिक

निर्जन पथ, तममयि वेला,
पथि' मग में खड़ा अकेला।
इस पथ के अन्य बटोही—
निर्धन—धनि,' प्रेमी—द्रोही,
सब गये, रहे तुम दो ही—
सरिता, पथि,' तुम निर्मोही।
है यह अति भयप्रद वेला,
पथि,' क्यों है खड़ा अकेला?



सरिता है कल-कल करती,
नीरव भाषा में कहती—
जीवन-सरिता यों बहती,
थिर नहीं कभी है रहती;
जाती, पथि,' जीवन-वेला,
क्यों है तू खड़ा अकेला ?

वह उषा मदिर मतवाली,
जिसकी सतरंगी प्याली;
अब नहीं रही वह लाली,
सन्ध्या ने चादर डाली;
सहसा खो दिया उजेला,
मत रह यों खड़ा अकेला।

कलियों की सुरभित क्यारी,
जूही की वह फुलवारी—
मह-मह थी दुनिया सारी,
अब सूखी लता विचारी;
है नहीं भ्रमर का मेला,
तू ही क्यों खड़ा अकेला ?

थी उषा, विहग वे अभिनव
करते थे मधुमय कलरव,



गूंजा था वन-वन में रव;
अब सूना है वह वैभव;
नीरव निशि, सूनी वेला,
तू पथ में खड़ा अकेला!
कलियों का जीवन रीता,
विहगों का कलरव बीता,
सूनी सी बहती सरिता,
वन का सब वैभव बीता;
रह गई व्यथित अवहेला,
तू मग में पड़ा अकेला!
थे जग में ज्ञानी, मानी,
दुनिया जिन पर दीवानी;
बीता वैभव लासानी—
केवल रह गई कहानी;
यह खेल अनोखा खेला,
तूही, 'पथि', खड़ा अकेला!
जग विरह-मिलन का मेला,
'पथि' मग में खड़ा अकेला!





भूल

अरे, भ्रमर, मत गूंज,
आह! यह जीवन ही है भूल!
सुमन के कोमल तन में शूल!
लहराते कोमल वृन्तों पर खिले सुमन सविलास,
आह! करुण जीवन में केवल दो घड़ियों का हास!
खिले, हँसे, फिर रुदन!
आह! ये बिखर गये प्रिय फूल!
रखते हैं पतंग नीरव सी दीप-शिखा से प्यार,
किन्तु उन्हीं पर पड़ी दुख भरी निठुर नियति की मार!
दीप-शिखा में जले
अरे, क्या थी यह उनकी भूल!
तोड़ पुलिन के कोमल हिय को बढ़ी सरित उस ओर,
मिली जलधि से, खोया निज अस्तित्व, आह! मतिभोर!
पाया खारी नीर,
रो रहे खो अमृत-रस कूल!
जीवन भर चातक "पी-पी" की करता रहा पुकार,
मरने पर भी दिये न जलधर ने आंसू दो चार।

फ



रहा तृषित ही, आह!
न हो पाई माया निर्मूल!
उमड़ रहा जलनिधि असीम, लहरें उठतीं उत्ताल;
तृषित जीव के आकुल मुख में पानी सका न डाल!
वृथा पयोधि अपार,
शून्य से व्याकुल बिखरे कूल!
उन्नत थे मस्तक, विशाल था उनका वह सम्मान,
आह! अन्त की देख दशा ये व्याकुल से थे प्राण!
मृत्यु खड़ी थी वहाँ,
धूल में बिखरा पड़ा दुकूल!
सुख में दुख की छाँह, व्यथित जीवन का यह उपहार—
—सुख-दुख की छाया में पलता संसृति का वह प्यार!
जग-जीवन में, आह!
नयन ये आज रहे हैं भूल!
आह! यह जीवन ही है भूल!





आलोक

घन-छादित शशि से प्रकाश ले
जीवन की निशि आलोकित कर।
रोता सा वंशी का मृदु स्वर,
जग-जीवन की करुणा में भर,
दुख को अपना ले, सुख की ध्वनि
से कर, री, जग को चिर-सुन्दर।
उमड़ घुमड़ आते नभ में घन,
देते अपना चिर-संचित धन,
सूना कर निज कोप, बनाते
हरित अवनि का वक्ष पयोधर।
तिल-तिल करके जलता प्रति पल,
भरता जग में ज्योति अचंचल,
आलोकित तममयी निशा को
करता दीपक प्राण जला कर।



निठुर शूल से छिन्न मृदुल तन,
विकल अनिल के झोंकों से वन,
मर पल में कलि' हुई अमर, अह!
जग को मृदु-मधु सौरभ से भर!

झड़े वृन्त से पल्लव कोमल,
शून्य, अरी, लतिकायें प्रतिपल,
गाते, किन्तु, भ्रमर, खग, कोकिल
सुन वसन्त का मादक मर्मर!

जीवन की घन नील निशा में,
जग की नीरव शून्य दिशा में,
कहीं तिमिर, आलोक कहीं है,
सुख है, करुणा का आकुल स्वर!

दुख की निशा—प्रकृति की माया,
कर विलीन प्राणों मे छाया
दे मधु-भार व्यथित जीवन को,
जग में चिर-वसन्त-गरिमा भर!





४

नहीं इसी जग तक सीमित है जीवन का यह विमल प्रदेश,
है अनन्त सा चिर-अनन्त मानव-जीवन का वह उद्देश।
कहीं निकट ही, अरे, सुनाई देता मधुर मिलन-संगीत,
जीव भ्रान्त सा मृग-माया में यत्र-तत्र फिर रहा सभीत।
आत्मा की अनन्त छवि में भी झलक रहा प्रभु का प्रिय वेश,
अरे, खोज से, व्यथित, मधुर सा प्रियतम का वह सुखमय देश!





जीवन-यात्रा

रजनि का है भीषण आतंक,
प्रखर, खर, तीव्र बहे जल-धार,
न दिखलाता सुखदायक तीर
सुविस्तृत सागर के उस पार।
जहां तक जाती दृष्टि, अपार
भयावह सिन्धु, तमोमय गगन,
श्रवण भी सुनते हैं चहुं ओर
नील-आकुल सागर-गर्जन।
कूल-रहित सागर में कहाँ,
कहो, जाती है मम नैया ?
अये, उन्मादिनि आशे, कहाँ
लगेगी जीवन की नैया ?
दृष्टि-पथ में है केवल नीर,
कहाँ ले जाती हो, किस तीर ?
दिखाती हो नीरव में किसे,
सुहासिनि, इङ्गित से उस ओर ?



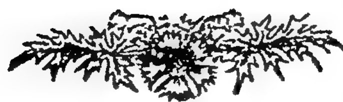
चली हो अन्वेषण करने, किसे,
बतलाओ तो, किस ओर ?
अरे, जलती है प्रति दिन वहां—
क्षितिज-तल में दिनकर की चिता,
दिग्वधू प्रिय-वियोग से म्लान
बहाती अश्रु धार व्यथिता !
वहीं क्या है तेरा शुभ देश—
ऊर्मि मुख सागर के उस पार ?
वहीं जाती क्या, होता जहां
गगन-पृथ्वी का है अभिसार ?
न तुम कुछ भी हो बतलाती,
तरी किस ओर लिये जाती !
प्रलयकर भीषण वायु प्रचण्ड
कभी करती है हाहाकार,
कभी सागर करता गर्जन,
उठाता लहरें बारम्बार।
प्रगट हो जलधर नभ में मेघ
कभी हैं बरसाते बहु नीर,
न दिखलाता इस विप्लव में
प्रकृति के कहीं सुहावन तीर।



चली तो भी है तरि जाती
न जाने किस अदृष्ट पथ में,
अरे, क्या स्निग्ध मृत्यु है वहां,
जहां जाती है लय होने?
वहां क्या है, री, भ्रामक भ्रान्ति?
वहां क्या है प्रमदा की कान्ति?
कभी दिखलाता मधुर प्रकाश
प्रकाशित करता सागर-ओक,
दिखाता झिलमिल करता कभी
सुचंचल आशा का आलोक।
कभी उदयाचल पर स्वर्णाभ
दिखाती जीवन की नव कान्ति,
मिटाती, हरती, करती शान्त
व्यथित मन की दुखदायक भ्रान्ति।
वहीं क्या जाती जीवन-तरी
उठाने जीवन का नव लाभ?
वहां क्या फलता आशा-स्वप्न
फलों में पुष्पों में स्वर्णाभ?
वहां क्या सोती आशा-कान्ति?
वहां क्या है जीवन की शान्ति?

मधुरिमामयी, जा रही कहाँ ?
अरे, कुछ भी तो बतलाओ,
सुखद-दुखमय लहरों में कहीं
मदिर सुषमा भी दिखलाओ।
कभी हो दुरित, कभी तुम प्रगट;
कभी होंगे थिर ये सपने ?
कभी होगा इसका कुछ अन्त—
सुखद या दुखद, अरी छलने ?
क्या कहा—जीवन सागर का
नहीं कुछ वारापार, सखे !
चलो जितना, है उतना ही
सुविस्तृत जलनिधि-धार, सखे !

है अनन्त जलनिधि खारा,
चिर-अनन्त जीवन-धारा !





स्वप्न-देश की ओर

जहाँ नीर के साथ गगन का
होता है अविकल अभिसार,
रवि-किरणों का जहाँ नित्य ही
होता लय अनुपम आकार,
दिवा-रात्रि में जहाँ न कोई
भेद दृष्टिगत है होता,
चलो उसी पथ पर, नाविक
लेकर तरि, सागर के उस पार।

पक्षीगण करते हों कलरव,
शुक-पिक का होता हो गान;
जहाँ मिलन-संगीत सदा है,
विरह-व्यथा का है अवसान;
नहीं शोक-भय-करुणा की ध्वनि
जहाँ कर्णगत है होती,
अरे, मत्त नाविक, उस पथ का
नहीं तुझे क्या किंचित् ज्ञान ?



जहाँ नील वनराजि दिखाई
देती सागर के उस तीर,
क्षीण श्याम रेखा समान
लहराता जहाँ सिन्धु का नीर;
जहाँ स्निग्ध नीलाभ ज्योति से
मि लित श्वेत दिनकर का तेज,
अरे, कहाँ वह देश, न जाती
मृत्यु जहाँ होकर बेपीर ?

चल, चल, नाविक, उसी स्वप्नमय
शुभ प्रदेश के पथ की ओर,
है जिसका अज्ञात मार्ग,
चल, ज्योतिर्मय जीवन की ओर,
डाल भँवर के साथ नाव मम,
भय मत कर कुछ भी मन में;
चलो, व्यथित नाविक, अविकल
ज्योतिर्मय स्वप्न-देश की ओर !





पथिक

है निस्तब्ध निशा नीरव
गम्भीर तममयी का आवास,
अन्धकार के आच्छादन में
छिपा तारिकाओं का हास।

कहती वायु प्रकम्पित स्वर में—
रुद्ध करो कुटिया के द्वार,
हुआ रजनि का राज्य, करो अब
बन्द नयन के छविमय द्वार।

श्याम घनाच्छादित नभतल में
विद्युल्लहरी का है वेग,
चपला की चंचल गति से
बढ़ता आकुल हिय का उद्वेग।

विषम प्रकृति के इस ताण्डव में
भी कातरता भय से मुक्त,
चला जा रहा पथिक, अहो!
निर्भीक, शान्ति-साहस-संयुक्त।



होता जाता है प्रगाढ़ तर
तम का प्रलय-रूप प्रतिपल;
करती प्लावित भू-मंडल को
जल से बृष्टि-धार अविरल।

आशा-दीप जला नयनों में,
हिय में रख आशा-आधार,
चला जा रहा जीवन-पथ का
पथिक लिये तब भी निज भार।

अरे, साहसी मनुज, कहाँ
प्रारम्भ हुई तेरी यह भ्रान्ति?
कब से तू चल रहा अथक
गति से; है कहाँ विरति, विश्रांति?

छोड़ मोहमय अन्ध नीड़
चलते पंकिल पथ पर सावेग,
रूक्ष, धूलिमय जीवन-पथ पर
गति तेरी सस्मिति सोद्वेग।

वही अथक गति, वही अगति पथ,
वही श्याम घन का मेला;
हुई न शेष आज भी वह गति,
वही विपद की अवहेला।



वह अज्ञात प्रदेश—सुखों का
जो असीम भण्डार विरल,
है अज्ञात आज भी, करते
अन्वेषण वह पथ प्रतिपल।

इस उन्मुक्त गगन के नीचे
रच-रच निज-निज मार्ग अटल,
चले जा रहे जीवन-पथ पर
अविरल गति से वे अविकल।

कभी किसी दिन इस साहस,
इस तेज, शक्ति का होगा लय;
हो न सकेगा फिर यह पथ
निःशेष—यही रहता है भय।

उस दिगन्त में है असीम पथ,
उस पथान्त में है वह देश;
वहाँ भरा है अति असीम सुख,
अरे, कहाँ उस पथ का शेष ?

वहाँ नहीं है अन्धकार, सुख
वैभव का है मधुमय गान,
नहीं, अहो ! वह क्रन्दन स्वर, सुन
जिसको व्यथित विकल हों प्राण।



वहाँ अमित आनन्द, वहाँ जा
होंगे सब आनन्द-विभोर,
जीवन-तरी चला, रे, प्रतिपल
उस दिगन्त-सीमा की ओर!



अन्वेषण

जग-जीवन में ज्यों है दिगन्त,
प्रिय, है मेरा यह पथ अनन्त।

नभ में अनन्त प्रगटित प्रकाश—
रवि-शशि-तारागण का विकाश;
सुन्दर सुमनावलि का सुहास,
उनका करुणामय, हा! विनाश;
जग-जीवन का कौतुक अनन्त।
मेरा भी पथ, प्रिय, है अनन्त।

चल कर अनन्त पथ सरि' छविमय
होती अनन्त सागर में लय,
मैं पथिक, भ्रान्त पथ, यह विस्मय—
है किस अनन्त में तेरा लय?



प्रिय, कहाँ तुम्हारी छवि ज्वलन्त ?
मेरा भी पथ, प्रिय, क्या अनन्त ?

चपला की चंचल चल छाया—
पल में आलोकमयी माया,
प्रति पल घन शोकमयी छाया;
कैसी, प्रिय, तेरी यह माया ?
है इसका क्या कुछ आदि-अन्त ?
मेरा पथ क्यों है, प्रिय, अनन्त ?

मधु ऋतु में पिक का मधुर गान,
पावस में विरहाकुलित तान;
माधुरि छविमय जीवन-अलान,
जिसमें पतझड़ का प्रलय-गान;
इस सुख-दुख का है नहीं अन्त,
जग-जीवन का यह पथ अनन्त।

जग-जीवन की अनन्त धारा
में बहता है यह पथहारा,
है कहाँ, अहो ! छविमय तारा ?
जिसका अनुसरण लक्ष्य प्यारा;
उसकी छाया क्या है दुरन्त ?
है तभी, अहो ! यह पथ अनन्त।



आशा-आलोक लिये हिय में,
सुख में, दुख में, भय-विस्मय में,
इस जीवन के प्रति पल-पल में,
रत मैं अनुसरण चिरन्तन में;
है इस अन्वेषण का न अन्त,
मेरा पथ है यह अति अनन्त।

पृथ्वी, सरि'-सिन्धु, नभस्तल में,
जीवन में, मरण-जागरण में,
तन्द्रा में, शयन-स्वप्न-जग में,
जीवन के मधुर-व्यथित पल में;
तेरी ही छवि प्रगटित, दुरन्त,
प्रियतम, यह मेरा पथ अनन्त।

तू भी अनन्त, गति यह अनन्त,
मेरा पथ भी, प्रिय, है अनन्त!



आकुल आकांक्षा

आशा की लहरों पर सोती
है चंचल जीवन की भ्रान्ति,
आह! जग रही आज यहाँ, रे,
भ्रामक, निर्बल, निष्फल क्रान्ति।

जग रही है जीवन में यह
भ्रान्ति आज दावानल-दाह,
जला रही है, रह-रह कर,
अन्तर की दाह अभागी, आह!

अरे, बता दे, पथिक, ज़रा,
वह कहाँ मुक्त, सीधी सी राह?
कहाँ बसा जीवन का धन? है
कहाँ फलित जीवन की चाह?

अरे, जा रहे कहाँ, विकल से,
संसृति-पथ के पथिक अजान?
आह! छोड़, रे, छोड़ वहीं—
वह पथ है भ्रान्त, अरे अज्ञान!



कहाँ जा रहा, आह ! थका सा
जीवन-सरि' का विकल प्रवाह ?
अरे, बता दे उस प्रिय का पथ,
मिटे जहाँ अन्तर की दाह !

वहाँ, अरे, उस दीप्त दिशा में
दिनकर-छवि होती है लीन !
आह ! रो रही प्रिय-वियोग से,
सान्ध्य-सुन्दरी, व्याकुल दीन !

वहाँ—वहीं, उस अन्धकार में
प्रिय का पथ ! क्या हीन-प्रदीप ?
आह ! बढ़ी चल, जीवन की छवि,
वहीं, जला प्राणों का दीप।

छोड़ दानवी ममता को, रे,
छोड़ विफल जीवन की दाह;
खींच रही क्यों प्रिय के पथ से,
अरी अभागिन, मेरी चाह ?

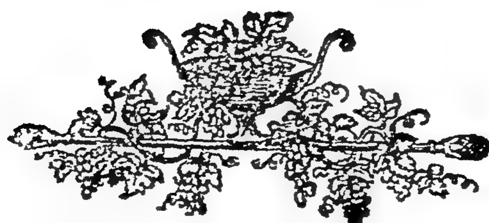
जाने दे, री, अरी, वासना
की छलमयी मूर्ति काली;
आह ! रिक्त ही रहे मदिर
ममता की मोहमयी प्याली !



खड़े वहाँ तुम, जीवन के धन,
यहाँ प्राण हैं पड़े मलीन !
कहाँ ? वता, रे, जग के जीवन,
प्रिय की जगमग ज्योति नवीन !

अरे, जला मत, जली जा रही
मेरे अन्तर की वह चाह;
दूर, दूर, री, नष्ट हुई जा
रही, आह ! जीवन की राह !

ढाल, ज़रा, करुणा-जल, मेरे
व्यथित, आह ! प्राणों के मीत,
इस जीवन की सृष्टि यही—
मिट रहा मदिर जीवन-संगीत !





प्रिय के पथ में

ले चल मुझे सहारा देकर
मेरे प्रिय की प्रीति नई, री।

पथ निर्जन है, रात अन्धेरी,
वन में फिरते जन्तु घने, री,
व्याकुल अग-जग सजल गगन सा,
आकुल झंझा भाग रही, री।

आश्रय नहीं, गरजता अम्बर,
लहरा रहा सामने सागर,
क्षुब्ध जलधि की लहर-लहर में
भय की भीषण भीति भरी, री।

तड़ित् कड़कती, रोते बादल,
जला रहा सागर दावानल,
महा प्रलय के इस ताण्डव में
आशा की छवि विसर रही, री।

देख दूर पर जलता दीपक,
नेत्र बिछे उस पथ में अपलक,
किन्तु, अरी, वह थी मरीचिका—
मेरी गति यह भटक रही, री।



शिथिल गात, अब नहीं रहा बल,
काँप रहा है साहस दुर्बल,
अपने पथ से दूर-दूर ही
मेरी आशा मचल रही, री।

वहां, अरी, उस दीप्त दिशा में,
इस गभीर तममयी निशा में—
प्रिय के सुखमय स्वप्न-देश की
जगमग सी वह ज्योति जगी, री।

आह ! वहाँ वह मधुमय गुंजन—
अह ! असीम सागर का गर्जन !
इसकी पहली लहरों में ही
जर्जर तरिका डोल रही, री !

अरी, मदभरी सुखमयि छवि, री,
व्यथित हृदय की आश्रय अब री,
प्रियतम के पथ की तू ही तो
आशा की शुभ ज्योति नई, री!

ले चल वहीं सहारा देकर
मेरे प्रिय की प्रीति नई, री !





उसकी खोज

है कहाँ प्रिय का नहीं घर।
खोजता फिरता, अरे, मैं
विश्व में, अज्ञान से भर!

सघन वन की नीलिमा में,
विजन गिरि की कन्दरा में,
ढूढ़ हारा निठुर की छवि
नगर में, मग वीथिका में;

मैं भटकता, हँस रहा वह
हृदय के तम में पुलक भर!

सुमन-दल की अमल, कोमल
विकसिता छवि में, अचंचल,
मधुभरा प्रिय के सुयश का,
विमल, मादक, भरा परिमल;

गा रहे उसके विभव के,
मुदित मन से, गीत मधुकर।

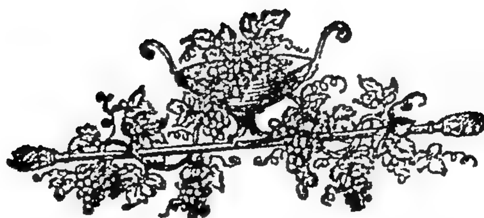


सजल करुणा-नीर से भर
वह रही सरिता निरन्तर,
प्रकृति के सौन्दर्य में भी
उसी के मृदु गान का स्वर;
अमर शोभा से विभूषित
उडु, समुज्ज्वल शशि, दिवाकर।
मलय-कम्पित गन्धवह में,
सान्ध्य, प्रातः, नैश नभ में,
भर रही करुणामयी छवि
जगत के प्रत्येक कण में,
हृदय के तममय भवन में
उसी प्रियतम का मृदुल स्वर!
खोजतीं लहरें जलधि की
प्रति समय आवेश में भर,
पकड़ने को छलमयी छवि
छू रही हैं व्यर्थ अम्बर
मिटा तन को तुच्छ बुद्बुद
देख पाते उसे पल भर!
खोजता फिरता जगत में—
गगन में, वन में, गुहा में,

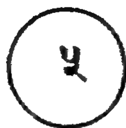


सुन रहा संगीत का स्वर,
किन्तु, हिय की कन्दरा में;
खोज ले प्रिय को, अरे, भव,
उसी में निज को मिटा कर!

उसी की छवि में निरन्तर
हृदय की भाषा मिला कर,
भर, अरे, आलोक से पथ
प्राण का दीपक जला कर;
देख वह छवि मुदित हो फिर
व्यथित प्राणों का विकल स्वर।







गौरव की खनि, कहाँ आज वह
तेरा गौरव का संभार !
अरे, रो रही जननी, खो कर
अपना गौरवमय संसार !

रहा आज केवल उन स्मृतियों
का करुणामय आकुल भार,
गत वैभव की याद दिलावें
ये बिखरी स्मृतियाँ दो चार !





चित्तौड़ दुर्ग के प्रति

अरे, यशस्वी किले, आर्य-गौरव
के मधुर मदिर आवास,
उस वलिदान भरे जीवन के
गौरवमय अतीत इतिहास;
तुझे देख कर आज हृदय में
भर जाता अतुलित अभिमान,
अरे, किसी दिन हुई सुरक्षित
तुझ से ही वीरों की शान।

किया तुम्हारे हित कितने ही
वीरों ने जीवन-वलिदान,
परिवर्धित था किया रुधिर से
सींच-सींच कर वह सम्मान।
वह अभिमान भरा जीवन,
उफ़, अरे, वीरता का वलिदान!
आज़ादी के दीवानों का,
आह! मधुर मतवाला गान!



हुआ नहीं वह कभी शिथिल
मतवाला सा मेवाड़ी गीत,
भरा रहा अभिमान भरी
हुंकारों से जीवन-संगीत।

उन्हे रहा अभिमान यही—
वे हैं "बप्पा" की प्रिय सन्तान;
सेवक हैं निज जन्म-भूमि के,
उनकी जननी राजस्थान।

मातृभूमि की सेवा में यदि
प्राणों का भी हो बलिदान,
गूँज उठेगा यह रव—
'मर कर भी रक्खा जननी का मान'।

इसी मान के लिये सहे
कितने ही वीरों ने सन्ताप—
वह "संग्राम" "भीम" वह मानी
वह मतवाला वीर "प्रताप"।

भरा हुआ वह गौरवमय
इतिहास इन्हीं बलिदानों से,
अरे, आज भी गूँज रहा
यह देश गर्व के गानों से।



वह आरावलि-शृंग आज भी
है वीरों का पूज्य शिखर,
वहाँ आज भी मान भरी
जौहर की ज्वाला रही बिखर!

अरे, आज भी रक्त-वर्ण है
हल्दी-घाटी की वह भूमि,
वीर नारियों की बलि से
है पावन तेरी पावन भूमि।

गाती वायु प्रकम्पित स्वर में,
अहो! आज भी वह संगीत;
कोकिल के कोमल स्वर में भी
भरा आज वह भैरव गीत।

रवि की प्रथम रश्मि में अब भी
भरी हुई है वह लाली,
सुमन-चयन में उस गौरव की
मदिर गन्ध पाता माली।

तुझे देख भर रहा व्यथित
गौरवमयि स्मृतियों से जीवन;
उस अतीत की तू समाधि,
जीवित अब भी तुझ में जीवन!

प्रताप की समाधि पर

अरे, कौन यह विषम भार
लेगा अपने सिर पर हो मौन ?
अमित शौर्य से आज प्रकम्पित
शत्रु-हृदय कर देगा कौन ?

कौन न विचलित होगा रण में ?
अरे, कहाँ है वह रणधीर ?
इस अशान्त से युद्ध-गगन में
कौन शान्त-घन सा वह वीर ?

किसका उन्नत हृदय लौह—
शल्यों को झेलेगा हो धीर ?
दहल उठेगा रिपु का उर
सुन कर किसका गर्जन गम्भीर ?
अरे, मानवी दुर्बलता से
सहे नहीं किसने सन्ताप ?
प्रलय-सिन्धु सा गर्ज उठे जो
ऐसा किसका अमित प्रताप ?



छिन्न-भिन्न कर दे रिपु-दल को,
रहे विश्व-मंडल भयभीत;
अट्टहास कर उठे हस सा,
गूँज उठे भैरव—संगीत;

अरे, जल उठे चिता विपद की,
धधक उठे प्रलयंकरि ज्वाल;
कहाँ वीर, जो सहन कर सके
विश्व-ध्वंसिनी ज्वाला-माल ?

खो कर भी निज प्राण रख सके
जननी जन्मभूमि का मान,
है वह कौन, करे किस पर
अभिमान, अरे, यह राजस्थान ?

अरे, शून्य मेवाड़ आज
खो कर "प्रताप" सी निज सन्तान !
आह ! आज है रिक्त गोद वह,
बिखर रहा सारा सम्मान !

सुन कर करुण पुकार प्रजा की
हुआ उसी दम. आह ! अधीर,
टूट पड़ा जो सिंह सदृश
अरि-दल पर, वह प्रशान्त सा वीर;



रहा समुन्नत सदा अरावलि—
शृंग सदृश जिसका वह शीश,
जीवित स्वाभिमान था जिस में,
कहाँ आज मेवाड़ाधीश ?
यहाँ, अरे, इस पुण्य–थली में
गत गौरव-गरिमा के साथ,
अरे, सो रहा पुण्यश्लोक वह
छिपा अवनि में अपना माथ !
जग के विकल प्रवर्तन से हो
श्रान्त आज अवलम्ब-विहीन,
अरुण करुण सी रवि-किरणें,
गत तेज, रश्मि, आभा से हीन,
बढ़ा रही है विभावरी के
पूर्व शून्य सा यह अवसाद !
अरे, प्रकृति भी रुदन कर रही
तेरे लिये आज सविषाद !
कँपा दिया था जिसने अपनी
हुंकारों से राज्य विशाल,
आह ! धूल में मिला पड़ा है
आज वही उन्नत सा भाल !



मान-हीन मेवाड़, करुण सा
वह प्रताप का भैरव-गान !
गौरव की विनष्ट छाया सा,
व्यथित आज यह राजस्थान !



अमर गीत

अवला के आँसू का आदर !
किया जौहरी ज्वालाओं ने
अपने बीच छिपा कर !

उनका वह उज्ज्वल सा दृग-जल—
विमल पुण्य-तप का पावन फल,
अरे, चुन लिया धवल कणों को
ज्वाला-माल सजा कर !

आह ! राजपूती अवलायें
वन कर जौहर की समिधायें
रक्खा निज सम्मान, अमर सी !
अग्नि-शिखा अपना कर !



खो अपने सिंहों को रण में,
यवन-दलों के कोलाहल में,
करें कलङ्कित मातृभूमि को
क्या निज मान गँवा कर?
शक्ति भरी अबला के बल में,
उन आँखों के करुणा-जल में;
अरे, बहा देतीं वे जग को
दृग का नीर बहा कर!
अपनाया निर्बल के बल को,
अग्नि-शिखाओं ने उस जल को;
किया, अरे, शृङ्गार उसी से
हीरक-हार बना कर!
बैठ उसी ज्वाला के पथ में,
गौरव की गरिमा के रथ में,
अमर आज कोमलता की खनि,
रा ज स्था न गु णा क र!
अमर आज वह दृग का पानी—
गौरव की मद भरी कहानी;
है उत्फुल्ल आज भी भारत
मादक गीत सुना कर!



चित्तौड़ का पत्थर

देखा उस पत्थर का रोना !
भूला सा था पड़ा हुआ, अह !
पत्थर का क्या रोना !

किन्तु नहीं—देखा था उसने,
उसके टूटे हुए हृदय ने
गौरव की देवी का प्रतिपल
उस 'थल पर वलि होना !

आह ! उस किले की लाली का,
अश्रु भरी फिर पामाली का,
दोनों ही की करुण कहानी—
विकल हृदय का रोना !

गैरिक ध्वजा अमर यश वाली,
करती प्रगट रक्त की लाली—
जिससे वीरों ने उसका था
सींचा कोना कोना !



अह ! स्वतंत्रता का वह वैभव,
सुख-सीमा में फिर दुख भैरव,
कोमलता की कोमल छवि का
हँस हँस जीवन खोना !
देखा सभी, आह ! हो उन्मद,
चिर-स्वतंत्र जीवन का वह मद,
वीरों के जीवन का उसमें
चिर प्रकाशमय होना।
कितनी ही पद-रज की ठोकर,
विलय रक्त-छींटों में हो कर,
उनकी शुभ-सीमा में प्रतिपल
उसका पावन होना।
किन्तु आज तप रहा तपस्वी,
गत जीवन-स्मृति बीच मनस्वी,
आता याद मातृ-चरणों पर
वीरों का वह सोना !
सुखमय वह भविष्य का सपना—
जीवन 'व्यथित' सफल हो अपना,
मिले अगर शुभ किसी वीर की
चिर-समाधि का कोना !
इसी लिये यह रोना !



विरागी से प्यार

अरे, शान्त सी उस आकृति में
किसके तप का भार !
बता, री, वरुणा की जल-धार !

उस दिन सोती छोड़ प्रिया को,
तज जग की अज्ञान–विभा को,
चला अकेला, ले कन्थक, वह
जीवन के उस पार !

देख जगत की करुण दशा को,
कष्टमयी सन्तप्त निशा को,
हुआ शान्ति-घन वन से उसको
य शो ध रा सा प्या र !

अमर शान्तिमय सघन विपिन में,
भर विराग माया-कानन में,
लगा खोजने शान्ति सुभग वह—
अमर तत्व का सार !



तपता कानन मध्य विरागी,
इधर तप रही थी विरहागी
यशोधरा राहुल को लेकर,
था विरागमय प्यार!

कृषतन पर कापाय वसन वह,
आनन पर शुभ तेज विमल, अह!
जीवन की निश्वास-श्वास में
था निष्ठुर का प्यार!

प्रिय की एक मात्र स्मृति का धन,
जिसके लिये जी रहा जीवन,
था तन का आधार, अरे, वह
राहुल का संसार!

तपता उधर विरागी वन में,
आया मदन भंग तप करने,
किन्तु उसी अवला के तप ने
मार भगाया मार!

अमल उसीका सजल तपोबल—
था पावन विराग का वह 'थल,
शुद्ध बुद्ध हो गया विरागी,
पाई शान्ति अपार!



विमल ज्ञान से हृदय विभूषित,
आँखे करुणा-जल से पूरित,
भिक्षा की झोली लेकर वह
आया प्रिय के द्वार!
आँखों से बहता अविरल जल,
व्यथित करुण था जीवन का पल,
किया अमर वह प्यार, आह! दे
राहुल का ही भार!







नहीं गन्ध वह, नहीं स्निग्ध
सौरभ, सौन्दर्य, न हरियाली,
किन चरणों का आश्रय ले
वे जीवन सफल करें, आली !

अपनों की ममता अपनों पर—
उन चरणों में गिर जायें,
'व्यथित' वही अपना लेंगे
बिखरी ये कोमल कलिकायें !





वसन्त

दिशा-दिशा में व्याप्त हुई है
क्यों सुख की सुन्दर लाली ?
अरुणारी आँखों से क्यों है
निकल रही मद की लाली ?
खिले आज सुन्दर सुपुष्प हैं,
चमन आज क्यों फूल रहा ?
आज चला मलयानिल क्यों
है पक्षि-वृन्द क्यों कूज रहा ?
नव शोभायुत कमल-कुंज पर
भ्रमरावलि क्यों गाती है ?
आम्र-मुकुल में बैठ कोकिला
क्या संवाद सुनाती है ?
अहो ! इसी मिस क्या वे कहते—
स्वागत, हे ऋतुराज वसन्त !
स्वागत, प्रेमी-जन-हिय-आनंद—
कारी मन्मथ-मित्र वसन्त !



आम्र-मञ्जरी ले निज मुख में
कोयल गीत सुनाती है,
खिले हुए सुमनों से सरसों
हार्दिक हर्ष दिखाती है।

पुलकित हो हिय में नर-नारी
स्वागत तेरा करते हैं,
आ, आ, प्रिय वसन्त, स्मर-सहचर—
कह तव आदर करते हैं।

भरता तू वसन्त अवनी की
गोदी सुन्दर पुष्पों से,
कितने ही हृदयों को तू
भरता आमोद-प्रमोदों से।

किन्तु व्यथित क्यों है करता
विरही के विकल कलेजे को ?
क्या अपराध हुआ उससे
पीड़ित करते उसके हिय को ?

तजो क्षुद्रता यह, वसन्त,
बस अन्त जगत-दुख का कर लो,
सुखमय जगतीतल को कर,
ऋतुराज, नाम सार्थक कर लो !

उस पार

पथिक, यहाँ ठहरो पल भर,
मुझको बतला जाओ यह बात—
किधर जा रहे व्याकुल से यों ?
भार साथ है, औ' कृष गात।
जाते प्रियतम के समीप क्या
स्नेह-सुमन का ले उपहार ?
उनके प्रिय दर्शन को, सखे,
जा रहे हो क्या तुम उस पार ?

यह गभीर, खरतर प्रवाह,
यह विकट राह, झंझा का वेग !
इसे पार करने की इच्छा
करते हो सस्मिति सावेग !
ठहरो, चंचल पथिक, अरे,
लौटो, हा ! लौटो, तुम सुकुमार !
हो न जाँय विचलित, पथ में,
साहस, वे भाव, और यह प्यार !



मृत्युवाहिनी भंवर खींच कर
ले न जाय तुमको पथ बीच,
कहीं न अभिलाषा विथकित
कर दे मग में ही झंझा नीच!

अन्धकार, नीरव निशि भयप्रद,
विथकित गात, प्रेम का ताप,
अरे, पथिक, इस पथ में हैं
बिखरे निर्मम अनन्त सन्ताप!

चले, किन्तु, जाते, प्रियवर,
जीवन की आशा, ममता छोड़,
बढ़ते बीहड़ पथ में, प्रियतम
से मिलने की आशा जोड़।

किन्तु, नहीं है मिलन वहाँ,
जीवन का है निर्मम उत्सर्ग,
प्रियतम के चरणों में करना
होगा, पथिक, आत्म-उत्सर्ग!

तजो भार यह, बन निर्धन,
करुणा को भी अपना लेना,
उन पावन चरणों में व्यथित
हृदय का हार चढ़ा देना!



वसन्त-वेदना

निशि-पति की रजत चन्द्रिका
ने अवनी को अपनाया,
जगती का निज वैभव से
अद्भुत वह रूप सजाया।

वह बाढ़ हुई ज्योत्स्ना की,
मिट गई रात की काली,
मानों राधा-समलंकृत
हो रहे आज वनमाली।

आली, सुन, अहा! "कुहू-कुह"
धुन कोयल की मनहारी,
प्रियतम वसन्त का स्वागत
करती मतवाली प्यारी।

देखो, वह प्यारा मधुकर
मृदु शब्द सुनाता आता,
प्रेमाकुल कुमुद-कली को
क्रीड़ा कर आज रिझाता।

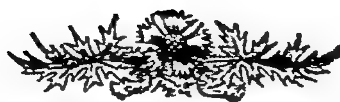


चल रहा समीर मलय यह
मृदु-मंजु सुरभि से संयुत,
रजनी का अञ्चल चञ्चल
वहु सुमन-गुच्छ से है युत।

सुर-बालायें, वह देखो,
कुटिया में प्रमुदित माली,
प्रिय-आराधन हित उनको,
देता सुमनों की डाली।

वह देखो,—आह! पपीहा
पापी "पी कहाँ" सुनाता,
विरहाकुल अपनी ध्वनि से
प्रियतम की याद दिलाता।

प्रमुदित सब ओर सभी हैं,
मधु-उत्सव जहाँ तहाँ हैं;
मेरे हित, आह! सभी......,
प्रियतम जब नहीं यहाँ हैं!





लघुता में महानता

मत समझो छोटा सा बालक,
प्रिय, यह जग की सृष्टि महान,
भरी हुई इसमें है प्रतिभा
शिव-प्रताप की, जीवन-प्राण !

क्या ? छोटा है, इसीलिये
करते हो, प्रिय, इसका अपमान !
किन्तु, इसी लघुता में भरी
विश्व की महिमा, अहो ! महान।

छोटी सी जूही की कलिका
करती वन को सौरभ-दान,
छोटे छोटे बीजों में हैं
छिपे वृक्ष के रूप महान।

रज-कण में है छिपा भूत
भावी प्रासादों का इतिहास,
होता विचलित जगतीतल
सुन कर विरहाकुल एक उसास !



नन्हीं सी आशा है, किन्तु,
जगत-जीवन का है आधार,
छोटी स्वाती की बूँदों में
मुक्ताओं का अनुपम हार।

छोटे तारे स्वर्गङ्गा को
देते दिव्य स्वरूप अनूप,
"माँ"–इस छोटे शव्द-जाल में
छिपा स्नेह का पावन रूप!

छोटी सी पुस्तक में है
बिखरा जीवन का सौरभ-सार,
छोटे हैं आँसू, हैं किन्तु,
दुखी जीवन के वे आधार!

लघु सी वीणा की तानों में
फूट पड़ा त्रिभुवन का गान,
नन्हीं सी प्रिय की स्मृति करती
व्यथित हृदय को शान्ति-प्रदान।

कवि की एक तान में निहित
वेदनाओं का चिर-आभास,
प्रिय, लघुता में ही है भरा
महत्ता का भावी इतिहास!



पथिक से

अरे, पथिक, मत दुखा हृदय
इसका, यह बिखरा हुआ सुमन,
है मुरझाया हुआ स्वयं ही
वन-उपवन का प्राण सुमन !

चले गये इसके वे दिन अब,
जब था जीवन-प्राण सुमन;
करता था अपने सौरभ से
जब सुरभित वन-वन उपवन।

अहो ! नहीं अब रूप मनोहर,
नहीं गन्ध, वह हरियाली;
नहीं छटा अब वह, जिस पर
बलि-बलि जाता प्रमुदित माली।

नहीं रहा वह रूप मदिर, अब
नहीं गुलाबी पंखड़ियाँ,
नहीं रहा वह यौवन सुन्दर,
नहीं रहीं सुख की घड़ियाँ।



आज नहीं वह रूप-माधुरी,
नही सुधा सम, अहो ! पराग;
नहीं, अरे, वह मादक मधु रस,
नहीं भ्रमर का मधुमय राग !

जिस डाली में खिल, गर्वित
हो इतराता, इठलाता था,
जिसमें पा जीवन, अपनी
नव छटा सुभग दिखलाता था;

आह ! उसी डाली में मुरझा
कर है पतित, आज उन्मत !
बिखर रहीं इसकी पंखड़ियाँ,
व्यथित, विकल है आज सुमन !

पथिक, कसकते हुए हृदय को
अधिक चोट पहुँचाना मत,
जीवन की इस व्याकुलता में
इसको और रुलाना मत !

इसे देख कर, आह ! वेदना
के दो अश्रु गिरा जाना !
अपने आँसू से सन्तप्त
हृदय मे शीतलता लाना !



भिखारिणी से

अरी, भिखारिन, तू कब से
इस जग से माँग रही है दान ?
नहीं यहाँ अवसर है सुनने
को तेरा कातर आह्वान !

मत्सरमय जग के पथिकों से
रखती है कुछ अभिलाषा ?
है निर्मम उपहास यहाँ,
पूरी न कभी होगी आशा !

करती है करुणामय स्वर में
जग की करुणा का आह्वान ?
निष्ठुर विश्व समझता तेरे
इस क्रन्दन को मधुमय गान !

अरी, छिपा ले अपने मुख की
दीन, व्यथामयि रेखायें,
मत्त मनुज कब पढ़ सकता है
वे करुणामयि गाथायें !



छोड़ो जग की मिथ्या आशा,
आओ, चलें प्रकृति के देश !
जगती के निर्मम पथिकों को
ही दे दो जग के ये क्लेश !

चलो वहाँ, है जहाँ जननि का
फैला वह अञ्चल प्यारा,
जिसकी ममतामय छाया के
नीचे स्नेह-सुखद धारा !

अहे ! वहीं पर चलो, जगत की
निर्ममता का जहाँ न लेश,
जहाँ न सुख-दुख की चञ्चल
धारा में बह जाये हिय-देश।

विमल चन्द्रिका देगी हमको
जीवन का शुभ-स्निग्ध प्रकाश,
कलियों से, सखि, हम माँगेगे
शैशव का वह मधुमय हास।

बैठ किसी निर्झर-तट पर, फिर,
छेड़ अपनी मधुमयि तान;
इस भोले जीवन में भूलें
व्यथित निठुर जगती का दान !



प्रलय-संगीत

गूँज रहा है विपुल वेग से
सर्वनाश-क्रन्दन !
खोल दे, प्रिय, तरि का बन्धन !
बह रही सन-सन पवन प्रचण्ड,
कर रही झंझा हाहाकार;
छोड़ दे नाव भँवर के साथ—
भरा हो सुख-दुख का सम्भार;
छोड़ अब जग-जीवन का मोह,
न हो किंचित् भय का स्पन्दन !
खोल दे, प्रिय, तरि का बन्धन !
निशि नीरव, तममय नभ देश,
प्रलय-घन, विद्युत् का है वेग;
सरि' के शान्ति-विहीन वक्ष पर
चञ्चल लहरों का आवेग;
खोल दे तरी, तान दे पाल,
छोड़ यह वृथा व्यथित क्रन्दन !
खोल दे, प्रिय, तरि का बन्धन !



कर रहे प्रलय-नृत्य नटराज,
गा रही वायु प्रलय-संगीत,
गूँजता भैरव डिडिम-नाद,
प्रलयकारी लहरों का गीत;
रुद्र के नृत्य-ताल के साथ
कर उठे तरी प्रलय-नर्तन !
खोल दे, प्रिय, तरि का बन्धन !



भीख

आज विकल सम्मान !
व्याकुल पड़ा चरण में, प्रियतम,
रख ले मेरा मान !
भय से भरी रात अन्धेरी,
जीवन-नभ घनघोर घिरे, री,
फिरते चारों ओर अहेरी,
आकुल से हैं प्राण !



विषम परीक्षा का यह अवसर—
थर-थर काँप रहा उर अन्तर;
हृदय विकल, प्राणों के भीतर,
प्रिय, है तेरा ध्यान।
मन भी हारा, तन भी हारा,
नहीं कहीं मिल रहा किनारा,
आकुल स्वर में यह पथहारा
गाता प्रिय के गान।
हृदय-देव, प्राणों के जीवन,
तेरी कृपा-अजर, अनुपम धन,
जीवन, तन, मन, तुझ पर अर्पण,
तेरा ही यह मान—
रख ले इसे, व्यथित हो उन्मद
गावे तेरे गान—
मधुर, मदिर, मृदु गान!





शान्ति

वह रहा है जीवन किस ओर !
अरी, वेदने, बता बता, री,
कहाँ शान्ति, किस ओर !
हृदय जल रहा है नित अविकल,
भस्म हो रहा मानस प्रतिपल,
अरे, झाड़ जाना मृदु-शीतल
पद-रज भी इस ओर !
निर्मम सा जग का यह मेला,
पाई निठुर विरस अवहेला,
मिटा, अरे, अपने को चल तू
जीवन के उस ओर !
विधे सुमन के कोमल से दल,
फिर भी हँसते जीवन के पल—
दे सौरभ का दान बनाया
जग को स्नेह-विभोर !



अरे, छिपा कोमल प्राणों में
जग की व्यथा, व्यथित तानों में,
हँसा विश्व को, पा ले प्रिय की
वह करुणा की कोर !
अनुपम शान्ति अथोर !

लक्ष्य

जीवन-सुमन सुरभिमय हो !
दे चिर-संचित मधु जग को निज,
यह जग-जीवन मधुमय हो !
निष्ठुर से जग के जीवन में,
पा दुख का उपहार अनिल में,
हँस हँस कर अपना ले करुणा,
जीवन सजल शूलमय हो !
पा दुख को मत विचलित हो, रे,
हृदय बिधा जग को मधु दे, रे,
कर सुरभित जग के उपवन को
तेरा पन्थ धूलिमय हो !



खो कर तुझे व्यथित जग-डाली,
रो, रो, आह ! मरेगा माली,
सींचेगा जग अश्रु-कणों से,
फिर यह हृदय शान्तिमय हो !
गूंज उठे सौरभ अम्बर में,
जग में, वन में, गिरि-गह्वर में,
बने विश्व, रे, यह चिर सुन्दर,
जीवन अमर कीर्तिमय हो !
जीवन-सुमन सुरभिमय हो !

